भारतीय समाज के शरीर के भीतर आज तरह तरह के कोढ़ भीतर ही भीतर दूर तक फैल चुके हैं और इसके कारण मनुष्य को हर क्षेत्र में निराशा और बेबसी का सामना करना पड़ता है। आज समाज के धर्म, न्याय, भगवान और अल्प सख्यक शोशकवर्ग ने आदमी के गले को इतना दबा रक्खा है कि साँस लेना भी मुश्किल है। लेखक ने इस छोटी सी पुस्तक में बहुत ही चुभने वाले शब्दों में समाज के फोड़े पर जबर्दस्त नश्तर लगाया है। इस पुस्तक को पढ़ने से हमारे रोग क्या हैं इसे आसानी से समझा जा सकता है।

तुम्हारी क्षय

लेखक

राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशक

किताब-महल

इलाहाबाद

दो शब्द

"तुम्हारी क्षय" के रूप में मैंने अपने कुछ भावों को व्यक्त किया है। वस्तुतः वे भाव और भी कड़े शब्दों का तक़ाज़ा रखते थे, किन्तु कुछ तो उतने कड़े शब्दों को तुरन्त प्राप्त करना मुश्किल था, और कुछ यह भी ख्याल उसमें बाधक हुआ, कि पुस्तक को पाठकों के पास पहुँचाना है।

पुस्तक छपरा जेल में लिखी गई थी और इसका कुछ अंश "जनता" में निकला था।

राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

१

तुम्हारे समाज की क्षय

मनुष्य सामाजिक पशु है। मनुष्य और पशु मे अन्तर यही है कि मनुष्य अपने हित और अहित के लिये अपने समाज पर अधिकतर निर्भर रहता है। वस्तुतः पशु-जगत् के बडे-बडे बलिष्ठ शत्रुओ के रहते तथा समय-समय पर आने वाले हिम-युग जैसे महान् प्राकृतिक उपद्रवों से बचने मे उसके दिमाग ने जो सहायता दी है, उसमे मनुष्य का समाज के रूप में संगठन बहुत भारी सहायक हुआ है। समाज ने पहले कमजोर मनुष्य की शक्तियो को सैकडो व्यक्तियो की एकता द्वारा बहुत बढा दिया और तभी वह अपने प्राकृतिक और दूसरे शत्रुओ से त्राण पा सका, लेकिन आज उस समाज ने प्राकृतिक और पशु-जगत् के दूसरे शत्रुओं से रक्षा पाने मे मदद देते हुए भी अपने भीतर से ऐसे शत्रुओ को पैदा कर दिया है, जिन्होंने कि उन प्राकृतिक और पाशविक शत्रुओ से भी अधिक मनुष्य-जीवन को नारकीय बनाने का काम किया है।

समाज का अपने भीतर के व्यक्तियों के प्रति न्याय करना प्रथम कर्त्तव्य है। न्याय का मतलब यह होना चाहिये कि हर

एक व्यक्ति अपने श्रम के फल का उपभोग कर सके। लेकिन आज हम उलटा देखते हैं?

धन वह है जो आदमी के जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। खाना, कपडा, मकान, ये ही चीजें हैं, जिन्हे कि वास्तविक धन कहना चाहिए। वास्तविक धन के उत्पादक वे ही हैं जो इन चीज़ो को पैदा करते है। किसान वास्तविक धन का उत्पादक है, क्योंकि वह मिट्टी को गेहूँ, चावल, कपास के रूप मे परिणत करता है। वह दो घटे रात रहते खेतों में पहुँचता है। जेठ की तपती दुपहरी हो या माघ-पूस के सवेरे की हड्डी छेदनेवाली सर्दी, वह हल जोतता है, ढेले फोडता है, उसका बदन पसीने से तर-ब-तर हो जाता है, उसके एक-एक हाथ मे सात-सात घट्टे पड़ जाते हैं, फावडा चलाते-चलाते उसकी साँस टॅग जाती है, लेकिन तब भी वह उसी तरह मशक्कत किये जाता है। क्योंकि उसको मालूम है कि धरती माता के यहाँ रिश्वत नही चल सकती—वह स्तुति-प्रार्थना के द्वारा अपने हृदय को खोल नही सकती। यह अकिंचन मिट्टी सोने के गेहूँ, रूपे के चावल और अगूरी मोतियो के रूप मे तब परिणत होती हैं, जब धरती माता देख लेती है, कि किसान ने उनके लिये अपने ख़ून के कितने घडे पसीने किये, कितनी बार थकावट के मारे उसका बदन चूर-चूर हो गया और कुदाल अनायास उसके हाथ से गिर गई।

गेहूँ बना बनाया तैयार एक-एक जगह दस-बीस मन

रक्खा नहीं मिलता, वह पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस दानों के रूप में और वह भी अलग-अलग बालियो मे छिपा सारे खेत मे बिखरा रहता है। किसान उन्हे जमा करता है, बालियों से अलग करता है। दस-दस बीस-बीस मन की राशि को एक जगह देख कर एक बार उसका हृदय पुलकित हो उठता है। महीनों की भूख से अधमरे उसके बच्चे चाह भरी निगाह से उस राशि को देखते ह, वे समझते हैं कि दुख की अँधेरी रात कटनेवाली है और सुख का सबेरा सामने आ रहा है। उनको क्या मालूम कि उनकी यह राशि—जिसे उनके पिता-माता ने इतने कष्ट के साथ पैदा किया—उनके खाने के लिये नही हे। इसके खाने के अधिकारी सबसे पहले वे स्त्री-पुरुष हैं, जिनके हाथो मे एक भी घट्टा नही है, जिनके हाथ गुलाब जैसे लाल और मक्खन जैसे कोमल हैं। जिनकी जेठ की दुपहरियाँ खस की टट्टियों, बिजली के पखो या शिमला और नैनीताल मे बीतती हैं। जाडा जिनके लिये सर्दी की तकलीफ नही लाता, बल्कि मुलायम ऊन और कीमती पोस्तीन से सारे बदन को ढँके इन लोगो के लिये आनन्द के सभी रास्ते खोल देता है। निठल्ले और निकम्मे ये बड़े आदमी—जमींदार, महाजन, मिल-मालिक, बडी-बडी तनखाहो वाले नौकर, पुरोहित और दूसरी सभी प्रकार की जोकें—किसान के कसाले की इस कमाई के भोजन का सब से पहले हक़ रखते हैं।

मज़दूर भोंपू लगते आँख मलते हुए कारखाने की ओर दौड़ता है। अभी कुछ दिनों पहले तक तो काम के घंटो का भी कोई निर्बन्ध न था, और अब भी अधिक मजदूरो वाले कारख़ानो पर ही वह नियम लागू है। वहाँ तीन आने और चार आने रोज पर वह खटता है। इसी तीन-चार आने मे उसे बीबी, तीन-चार बच्चो और बूढे माँ-बाप की भी फिक्र करनी है। एक दिन भी निश्चिन्त हो पेट भर खाना उसके लिए हराम है, और उस पर से यदि वह बीमार पड गया तो नौकरी से जवाब। यदि बूढा या अगभग हो गया तो आसमान के नीचे उसके और उसके बाल-बच्चो को भीख का भी देने वाला कोई नहीं। यही नहीं, कल तक कारख़ाना चौबीसो घटे चल रहा था, आज मालिक के पास खबर आती है—चीजों का दाम गिर गया, अब उन्हे लागत दाम पर भी बाज़ार मे कोई खरीदने वाला नहीं है। कारखाने मे ताला लगा दिया जाता हैं। मजदूर, उसके बाल-बच्चे दाने-दाने के लिये बिलखने लगते हैं। जब उसे काम मिला था और मजदूरी मिलती थी तब भी उसकी ज़िन्दगी नरक से बेहतर न थी, और बेकारी तो जिन्दा ही मौत। ऐसी तकलीफो को सहते मजदूर तैयार करता है बढ़िया से बढिया कपडे, चीनी, मिठाइयाँ और हज़ारों तरह की सुख-विलास की सामग्रियाँ। वह अपने हाथो से खडा करता है, बडे-बड़े महल, बँगले, बाग, ठढी सडके। लेकिन खुद उसके लिये क्या मिलता है? उसकी

झोपडी शायद ही बरसात मे साबित रहती हो। उसके बदन के लिए चीथडे भी ढकने के लिए नहीं मिलते। कितनी ही उसकी अपनी बनायी चीजे उसके लिए स्वप्न की-सी मालूम होती हैं। और मजदूर की हड्डियो, पसीने और चिन्ता से बनी इन चीजों का उपभोग कौन करता है? उनके खून के गारे से उठी अट्टालिकाओ मे विहार कौन करता है? वही बड़ी-बडी जोके—जमीदार, महाजन, मिलमालिक, बडी-बडी तनखाहो वाले नौकर, पुरोहित।

किसान और मजदूर जिसके लिए अपनी जवानी धूल मे मिलाते हैं, अपनी नीद हराम करते हैं, अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश करते हैं, वह उन्हे भूखा-नगा रख करके ही सतुष्ट नहीं होता, बल्कि पग-पग पर उन्हे अपमानित करना अपना कर्त्तव्य समझता है। किसान और मजदूर गरीब क्यो हैं? क्योंकि उन्होने अपनी कमाई परिवार और बाल-बच्चो को भूखा रखकर इन जोको को खुशी-खुशी ले दे दिया। उन्ही के खून से मोटी हुई ये तोदे गरीबी के लिए उन्हे लाछित करती हैं। उनकी भाषा मे इन गरीबो के लिए अलग शब्द हैं। 'आप' की तो बात ही क्या, 'तुम' भी उनके लिए नही इस्तेमाल किया जा सकता। 'तू', 'रे', 'अबे' से ही उन्हे सम्बोधित किया जा रहा है। बुरी से बुरी गालियों को उनके लिए इस्तेमाल करना अमीरी शान है। उनके ही कारण गरीबी का शिकार मजदूर और किसान उनके सामने चारपाई

पर नहीं बैठ सकता, खड़ाऊँ नही पहन सकता, छाता नहीं लगा सकता। गॉव के किसान की इज्जत और जानोमाल जमींदार के हाथ मे है। वह जैसे चाहता है, उसे नाक रगड़ने को मजबूर करता है।

यह तो हुई वास्तविक धन के उत्पादकों की अवस्था और जोंके ? मज़दूरो और किसानो की कमाई उनके लिए अर्पित है। वे इसके सोचने की परवाह नही करते कि उनकी लाखों की तहसील और मुनाफे का रुपया किस तरह प्राप्त किया गया। क्या वे कभी यह सोचने की तकलीफ करते हैं, कि उस एक-एक रुपये को जमा करने के लिए किसान ने अपने बच्चो को कितनी बार भूखा रक्खा ? कितनी माताओं ने अपने को नगा रक्खा ? कितने बीमारो ने दवा और पथ्य मे महरूम रह कर अपने प्राण छोडे ? यदि उनको ऐसा ख़्याल होता तो वे कभी दो हज़ार की फोर्डकार की जगह तीस हज़ार का रोल्स-राइस खरीदना पसद न करते, महीने मे हज़ार-हज़ार रुपये मोटर के तेल मे नहीं फूँक डालते। हाकिमो की दावतों और विलास के जलसो मे लाखो का वारा-न्यारा न करते।

यह सब अंधेर होते हुए भी किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। समाज के पंच कह उठते हैं, अमीर-ग़रीब सदा से चले आये हैं; अगर सभी बराबर कर दिये जायँ तो कोई काम करना पसन्द नही करेगा; दुनिया के चलाने के लिए अमीर-ग़रीब का रहना ज़रूरी है। समाज की बेडियाँ जेलखाने

की बेड़ियों से भी सख़्त ह। उन्हे आँखों से देखा नहीं जा सकता, लेकिन जहाँ समाज के कानून के खिलाफ—चाहे वह क़ानून सरासर अन्याय पर ही अवलम्बित क्यो न हो—कोई बात हुई, कि समाज हाथ धोकर पीछे पड़ जाता है। कुएँ मे पानी है, जगत पर लोटा-डोरी रक्खी हुई है, एक तरफ़ मदिर के आँगन मे भक्तिभाव से झूम-झूम कर लोग रामायण पढ रहे हैं "जाति पाँति पूछे नहि कोई। हरि के भजै सो हरि के होई"। गीता हो रही है—"विद्या-विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पडिताः समदर्शिनः॥" (विद्या और शील-सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाडाल सब मे पण्डित लोग समदर्शी होते हैं) महात्मा और पडित लोग गद्गद् होकर अर्थ कर रहे हैं—"जो है सो सब भगवान् की देन है, सियाराम मय सब जग जानी। करहु प्रणाम जोरि जुग पानी। चराचर जगत् सब भगवान् के रूप हैं, जो है सो उसमें कोई भेद नहीं।" मालूम होता है चारो ओर समदर्शिता, विश्वबन्धुत्व और प्रेम का महासमुद्र लहरे मार रहा है। उसी समय जेठ की दुपहरी मे प्यास का मारा चमार आ जाता है, उसका कदम कुँए की ओर बढता है, भक्तों मे से कोई उसकी जात पहचानता है, कानाफूसी होती है, महात्मा और भक्ति-रस मे गद्गद् सभी श्रोताओं की त्योरियाँ चढ जाती हैं, आँखे लाल हो जाती हैं, और सभी मानो जीते जी खा जाने के लिए उस निरपराध व्यक्ति की ओर दौड पड़ते हैं। उसका क़सूर क्या? क्या कुएँ

से पानी पीना अपराध है? क्या समदर्शिता और विश्वबन्धुता के वायुमंडल मे कुएँ से पानी निकाल कर पी लेना महापाप है? और यह मडली कुछ ही मिनटो पहले जिस राग को अलाप रही थी, उसके रहते क्या ऐसा करना उचित था? उन व्यक्तियों मे से एक-एक को अलग-अलग पूछिए—"तुम्हारे वचन और कर्म मे, मन्तव्य और कर्त्तव्य मे इतना अतर क्यों?" घूम-फिर कर आप इसी नतीजे पर पहुँचेगे कि समाज उनसे वैसा ही कराना चाहता है।

किसी ऊँची जात के माता-पिता की एक छोटी-सी लडकी है। समाज ने मजबूर किया है, कि उसकी शादी आठ-दस बरस की उम्र तक हो जाय। ग्यारहवे बरस मे वह लडकी विधवा हो जाती है। समाज कहता है, उसकी शादी नही हो सकती, अब जिन्दगी भर उसे ब्रह्मचर्य रहना और इन्द्रिय-सयम करना पड़ेगा। कैसा ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-सयम!—जिसके पालन मे विश्वामित्र और पराशर, ऋष्यशृ ग और व्यास जैसे बड़े-बड़े ऋषि बिल्कुल असमर्थ रहे। आज भी उसी विधवा लड़की का पचास साल का बूढा बाप एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी से शादी करने को तैयार है। उसके पचीस वर्ष के भाई की स्त्री को मरे महीने से ज्यादा भी नही हुआ, लेकिन दूसरी शादी की बातचीत तै हो रही है। क्या समाज की अक्ल मारी गई है? क्या उसकी आँखो पर पर्दा पड गया है? क्या उसे मालूम नही है, कि इस अबोध बालिका से जिंदगी भर ब्रह्मचर्य

और सयम की आशा रखना दुराशा मात्र है ? क्या अपने पास-पडोस मे प्रति वर्ष एक-दो गर्भ गिरते उसने नही देखे ? इतने पर भी क्या वह नही समझ सकता, कि यदि उस बालिका को खुलकर पुरुष-समागम का मौका नही दिया गया, तो वह छिप कर वैसा करेगी ? खुलाकर करने पर शायद वह रिश्ते और जाति का भी ख्याल करती, लेकिन छिप कर करने पर तो वह सब से नज़दीक के सम्बन्धी के साथ भी नाता जोड सकती है। किसी जाति का पुरुष, जो उसे सुलभ है, उसके प्रेम का पात्र हो सकता है। इस गुप्त-प्रणय का परिणाम, वह जानती है, वह उसके लिए मृत्यु-दण्ड से कम नही है। यदि गर्भ न गिराया जा सका, तो उसे सब से हल्की सजा यही मिलेगी कि उसके माता-पिता, भाई-बन्धु, खून के अत्यत नज़दीकी सम्बन्धी उसे किसी अनजान शहर मे, किसी सुनसान जगह मे, छोड आये, जहाँ उसे जीवन भर वेश्यावृत्ति या उसी तरह का कोई काम करना होगा। समाज के कारण उसके भाई-बन्धु उसे जहर भी खिला सकते है, हथियार से भी मार सकते हैं। यदि गुप्त सम्बन्ध को छिपाया जा सका, तो गर्भ तो ज़रूर ही एक दो गिराये जायेगे। जो समाज इन सब बातो को अपनी आँखों देखता है और इसके परिणामों को भी भली भाँति समझता है, वह कैसे इतनी असंभव शर्ते अभागे व्यक्तियो के सामने पेश करता है ? क्या इससे उसकी हृदयहीनता स्पष्ट नही होती ? हर पीढ़ी के करोड़ो व्यक्तियों के जीवन को इस प्रकार कलुषित, पीडित और कटका-

कीर्ण बनाकर क्या वह अपनी नर-पिशाचता का परिचय नही देता ? ऐसे समाज के लिये हमारे दिल मे क्या इज़्ज़त हो सकती है, क्या सहानुभूति हो सकती है ? बाहर से धर्म का ढोग, सदाचार का अभिनय, ज्ञान-विज्ञान का तमाशा किया जाता है, और भीतर से यह जघन्य, कुत्सित कर्म ! धिक्कार है ऐसे समाज को !! सर्वनाश हो ऐसे समाज का !!!

जिस समाज ने प्रतिभाओ को जीते दफनाना अपना कर्त्तव्य समझा है और गदहो के सामने अंगूर बिखेरने मे जिसे आनन्द आता है, क्या ऐसे समाज के अस्तित्व को हमे पल भर भी बर्दाश्त करना चाहिए ? एक गरीब माता-पिता हैं। उनको ख़ुद न अपने खाने-पीने का ठिकाना है, न पहनने-ओढ़ने का। उनके घर मे एक असाधारण प्रतिभाशाली बालक पैदा होता है। लडकपन से ही उसे किसी धनी के बच्चे को खेलाना पडता है, भेड़-बकरियाँ चरा कर पेट पालने के लिए मजबूर होना पडता है। माँ-बाप जानते तक नही कि लडके को पढाना-लिखाना भी उनका कर्त्तव्य है। यदि वे जानते भी है, तो न उनके पास फीस देने के लिए पैसा है न किताब के लिये दाम। लडका बडा होता है, बूढ़ा होता है, मर जाता है और साथ ही अपने साथ उस प्रतिभा को लिए जाता है, जिसके द्वारा वह देश को एक चाणक्य, एक कालिदास, एक आर्य-भट्ट, एक रवीन्द्र, एक रमन दे सकता था। मैने गॉव के एक अभिनेता को देखा है। यदि वह किसी ऐसे देश मे पैदा हुआ होता, जहॉ प्रतिभाओं के आगे बढने

के सारे रास्ते खुले हैं, तो वहाँ वह प्रथम श्रेणी का जगद्विख्यात अभिनेता होता। लेकिन आज साठ बरस की अवस्था में इस अशिक्षित व्यक्ति की वह महान् प्रतिभा ग्रामीण स्त्री-पुरुष-जीवन के कुछ सजीव चित्रण द्वारा अपने परिचितों का कुछ मनोरंजन मात्र कर सकती है। मैंने ऐसे स्वाभाविक कवि देखे हैं, जिन्हे अक्षर का कोई भी ज्ञान नहीं। जिस भाषा को वे बोलते हैं, उसमे कोई लिखित साहित्य नही, कोई आचार्य-परम्परा नहीं, छन्द और अलकार के परिचय का कोई साधन नहीं, तब भी अपनी भाषा मे वे बहुत ही भावपूर्ण—रसपूर्ण कविता कर सकते हैं। शिक्षित जन उनकी कविता को, गँवारू कह कर, निरादर करते हैं और इसके कारण वे खुद भी उसे वैसा ही समझते हैं। कवित्व के लिये बाहर से न उन्हे कोई प्रेरणा मिलती है न प्रोत्साहन, सिर्फ अन्तःप्रेरणा से मजबूर हो कर वे कभी-कभी कुछ गा लेते हैं। मैं गाँव के एक लड़के के बारे मे जानता हूँ। उसकी माँ विधवा है। नाम मात्र का थोड़ा-सा खेत पुत्र और माता की जीविका का साधन है। लडका गाँव की पाठशाला मे पढ़ने बैठा। असाधारण मेधावी, गणित मे विशेष निपुण। प्राइमरी-स्कूल में उसे छात्र-वृत्ति मिली, जिसकी सहायता से उसने मिड्ल पास किया। वहाँ भी उसने छात्रवृत्ति पाई। यद्यपि वह पर्याप्त न थी, तो भी किसी तरह वह अपनी पढाई को जारी रख सकता था। मैट्रिक में युक्तप्रान्त से उत्तीर्ण होने वाले कई हज़ार छात्रों में उसका नम्बर दूसरा या तीसरा

था। किन्तु जो एक या दो छात्र उसकी अपेक्षा अधिक नम्बर से पास हुए थे, वे धनियो के लाड़ले थे। उनके ऊपर दो-दो तीन तीन अध्यापक घर मे अलग रक्खे गये थे। उन्हे हमारे उक्त तरुण की तरह खाने-पीने की चिन्ता न थी। अबकी बार फिर उसे छात्रवृत्ति मिली। वह कालेज मे पढने लगा। फीजिक्स, केमिस्ट्री और गणित उसके विषय थे। छात्र-वृत्ति पर्याप्त न थी। इधर स्वास्थ्य भी इतना अच्छा न रहा। उस पर से एक देहाती जगह से आकर तीव्र विद्यार्थियो के लिए मशहूर एक विश्वविद्यालय मे उसने नाम लिखाया था। यहाँ छात्र-वृत्तियाँ कम थी। सयोग से एक ही छात्र-वृत्ति के लिए तीन विद्यार्थियों के नम्बर बराबर आ गये। छात्र-वृत्ति किसको मिलनी चाहिए, इसका निर्णय करते वक्त विश्वविद्यालय ने ऐसे दो विषय ले लिए, जिनमे एक और ही छात्र—जो कि एक धनाढ्य की सन्तान था—के एक-दो नम्बर अधिक हो गये। किसी ने इसकी परवाह न की, कि उस तरुण की प्रतिभा—जो घोर दरिद्रता मे जन्म लेकर भी कितनी कठिनाइयो को पार कर यहाँ तक पहुँची थी—का भविष्य क्या होगा। मुझे उस तरुण से साल भर बाद मिलने का मौक़ा मिला। मैने देखा—उसका चेहरा थाइसिस् के रोगी जैसा हो गया है। बदन बहुत दुबला-पतला। मैने कारण पूछा। तरुण ने बहाना बना लिया। उसके चले जाने पर दूसरे साथी ने बतलाया—'उसे इस साल छात्र-वृत्ति नही मिली। बहुत कहने-सुनने पर फीस माफ हो गई। खाने-पीने के लिए उसने ट्यूशन पाने की

बडी कोशिश की, लेकिन न मिला। एक-दो दोस्त अपने साथ रखने का आग्रह करते थे, लेकिन इसे वह अपने आत्मसम्मान के खिलाफ समझता था।' दूसरे दिन अपनी जानकारी को जतलाते हुए मैने जब तरुण से पूछा तो उसने उत्तर दिया— "हाँ ठीक है। मैने ट्यूशन के लिए बहुत कोशिश की। कालेज के घन्टो को समाप्त करके मैं घन्टों इसी फेर मे घूमता रहा। लेकिन कही कुछ होते-हवाते न देख मैने उसे अब छोड दिया है।" जिस वक्त मुझे उस प्रतिभाशाली तरुण की इस उपेक्षा को देखने का मौका मिला और यह भी सुना कि वह सिर्फ एक बार थोडी-सी खिचडी खाकर गुजारा करता आ रहा है, तो सच बताऊँ मेरी आँखो मे खून उतर आया। मुझे ख़्याल आता था—ऐसे समाज को जीने देना पाप है। इस पाखण्डी, धूर्त, बेईमान, ज़ालिम, नृशंस समाज को पेट्रोल डालकर जला देना चाहिए।

एक तरफ प्रतिभाओं की इस तरह अवहेलना और दूसरी तरफ धनियों के गदहे लडको पर आधे दर्जन ट्यूटर लगा-लगा कर ठोक-पीट कर आगे बढाना। मै एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ, जिसके दिमाग मे सोलहो आना गोबर भरा हुआ था, लेकिन वह एक करोडपति के घर पैदा हुआ था। उसके लिए मैट्रिक् पास करना भी असभव था। लेकिन आज वह एम्० ए० ही नही है, डाक्टर है। उसके नाम से दर्जनों किताबे छपी हैं। दूर की दुनिया उसे बड़ा स्कालर समझती है। एक बार "उसकी" एक किताब को एक सज्जन पढकर बोल उठे—"मैने इनकी

अमुक किताब पढी थी। उसकी अंग्रेज़ी बडी सुन्दर थी; और इस किताब की भाषा तो बड़ी रद्दी है!" उनको क्या मालूम था कि उस किताब का लेखक दूसरा था और इस किताब का दूसरा।

प्रतिभाओ के गले पर इस प्रकार छुरी चलते देखकर जो समाज खिन्न नही होता, उस समाज की "जय हो" छोड और क्या कहा जा सकता है?

२

तुम्हारे धर्म की क्षय

वैसे तो धर्मों मे आपस मे मतभेद हैं। एक पूरब मुँह कर के पूजा करने का विधान करता है, तो दूसरा पच्छिम ओर। एक सिर पर कुछ बाल बढाना चाहता है, तो दूसरा दाढी पर। एक मूँछ कतरने के लिए कहता है, तो दूसरा मूँछ रखने के लिए। एक जानवर का गला रेतने के लिए कहता हैं, तो दूसरा एक हाथ मे गर्दन साफ करने को। एक कुर्ते का गला दाहिनी तरफ रखता है, तो दूसरा बाई तरफ। एक जूठ-मीठ का कोई विचार नही रखता, तो दूसरे के यहाँ जाति के भीतर भी बहुत से चूल्हे हैं। एक ख़ुदा के सिवा दूसरे का नाम भी दुनिया मे रहने देना नही चाहता, तो दूसरे के देवताओं की सख्या नही। एक गाय की रक्षा के लिये जान देने को कहता है, तो दूसरा उसकी क़ुर्बानी से बडा सवाब समझता है।

इसी तरह दुनिया के सभी मजहबो मे भारी मतभेद है। ये मतभेद सिर्फ विचारो तक ही सीमित नही रहे, बल्कि पिछले दो हजार वर्षों का इतिहास बतला रहा है कि इन मतभेदो के कारण मज़हबो ने एक दूसरे के ऊपर ज़ुल्म के कितने पहाड़ ढाये। यूनान और रोम के अमर कलाकारो की कृतियो का

आज अभाव क्यो दीखता है ? इसलिये कि वहाँ एक ऐसा मज-हब आया जो ऐसी मूर्तियो के अस्तित्व को अपने लिए खतरे की चीज समझता था। ईरान की जातीय कला, साहित्य और संस्कृति को नामशेष-सा क्यों हो जाना पड़ा ?—क्योंकि उसे एक ऐसे मज़हब से पाला पड़ा, जो ईरानियत का नाम भी धरती से मिटा देने पर तुला हुआ था। मेक्सिको और पेरू, तुर्किस्तान और अफग़ानिस्तान, मिश्र और जावा—जहाँ भी देखिये, मज-हबो ने अपने को कला, साहित्य, सस्कृति का दुश्मन साबित किया। और ख़ून-ख़राबी ? इसके लिए तो पूछिये मत। अपने-अपने ख़ुदा और भगवान् के नाम पर, अपनी-अपनी किताबो और पाखंडो के नाम पर मनुष्य के खून को उन्होने पानी से भी सस्ता कर दिखलाया। यदि पुराने यूनानी धर्म के नाम पर निरपराध ईसाई बच्चे-बूढो, स्त्री-पुरुषो को शेरो से फड़वाना, तलवार के घाट उतारना बडे पुण्य का काम समझते थे, तो पीछे अधिकार हाथ आने पर ईसाई भी क्या उनसे पीछे रहे ? ईसामसीह के नाम पर उन्होने खुल कर तलवार इस्तेमाल किया। जर्मनी में ईसाइयत के भीतर लोगो को लाने के लिए कत्ले-आम-सा मचा दिया गया। पुराने जर्मन ओकवृक्ष की पूजा करते थे। कही ऐसा न हो कि ये ओक उन्हे फिर पथभ्रष्ट कर दे, इसके लिये बस्तियों के आसपास एक भी ओक को रहने न दिया गया। पोप और पेत्रियार्क, इंजील और ईसा के नाम पर प्रतिभाशाली व्यक्तियों के विचार-स्वातंत्र्य को आग और लोहे

के जरिये से दबाते रहे। जरा से विचार-भेद के लिए कितनों को चर्खी से दबाया गया—कितनो को जीते जी आग मे जलाया गया। हिन्दुस्तान की भूमि ऐसी धार्मिक मतान्धता का कम शिकार नहीं रही है। इस्लाम के आने से पहले भी क्या मजहब ने वेदमत्र के बोलने और सुनने वालो के मुँह और कानो मे पिघले रॉगे और लाख को नहीं भरा? शकराचार्य ऐसे आदमी—जो कि सारी शक्ति लगा गला फाड-फाड कर यही चिल्ला रहे थे कि सभी ब्रह्म हं, ब्रह्म से भिन्न सभी चीज़े झूठी हैं, तथा रामानुज और दूसरो के भी दर्शन जबानी जमा-ख़र्च से आगे नही बढे, बल्कि सारी शक्ति लगाकर शूद्रों और दलितो को नीचे दबा रखने मे उन्होने कोई कोर-कसर उठा नही रक्खी। और इस्लाम के आने के बाद तो हिन्दू-धर्म और इस्लाम के खू-रेज झगडे आज तक चल रहे हैं। उन्होंने तो हमारे देश को अब तक नरक बना रखा है। कहने के लिए इस्लाम शान्ति और विश्व-बन्धुत्व का धर्म कहलाता है, हिन्दू-धर्म ब्रह्मज्ञान और सहिष्णुता का धर्म बतलाया जाता है, किन्तु क्या इन दोनो धर्मों ने अपने इस दावे को कार्य-रूप मे परिणत करके दिखलाया? हिन्दू मुसलमानों पर दोष लगाते हे कि वे बेगुनाहो का खून करते हैं, हमारे मन्दिरो और पवित्र तीर्थों को भ्रष्ट करते हैं, हमारी स्त्रियो को भगा ले जाते हैं। लेकिन, झगडे मे क्या हिन्दू बेगुनाहों का खून करने से बाज़ आते हैं? चाहे आप कानपुर के हिन्दू-मुस्लिम झगडे को ले लीजिए या बनारस के,

इलाहाबाद के या आगरे के, सब जगह देखेंगे कि हिन्दुओ और मुसलमानो के छुरे और लाठी के शिकार हुए हैं निरपराध, अजनबी स्त्री-पुरुष, बूढे-बच्चे। गाव या दूसरे मुहल्ले का कोई अभागा आदमी अनजाने उस रास्ते आ गुज़रा और कोई पीछे से छुरा भोंक कर चम्पत हो गया। सभी धर्म दया का दावा करते हैं, लेकिन हिन्दुस्तान के इन धार्मिक झगडो को देखिए, तो आपको मालूम होगा कि वहाँ मनुष्यता पनाह माँग रही है। निहत्थे बूढे और बूढियाँ ही नही, छोटे-छोटे बच्चे तक मार डाले जाते हे। अपने धर्म के दुश्मनो को जलती आग मे फेकने की बात अब भी देखी जाती है।

एक देश और एक ख़ून मनुष्य को भाई-भाई बनाते हे। ख़ून का नाता तोड़ना अस्वाभाविक है, लेकिन हम हिन्दुस्तान मे क्या देखते हैं? हिन्दुओ की सभी जातियो मे, चाहे आरम्भ मे कुछ भी क्यो न रहा हो, अब तो एक ही ख़ून दौड रहा है, क्या शकल देखकर किसी के बारे में आप बतला सकते है कि यह ब्राह्मण है और वह शूद्र। कोयले से भी काले ब्राह्मण आपको लाखो की तादाद मे मिलेंगे। और शूद्रो मे भी गेहुएँ रंग वालो का अभाव नहीं है। पास-पास मे रहने वाले स्त्री-पुरुषो के यौन-सम्बन्ध, जाति की ओर से हजार रुकावट होने पर भी, हम आए दिन देखते हैं। कितने ही धनी ख़ानदानो, राजवशो के बारे मे तो लोग साफ कहते हैं कि दास का लडका राजा और दासी का लडका राजपुत्र। इतना होने

पर भी हिन्दू-धर्म लोगो को हजारों जातियो मे बॉटे हुए है। कितने ही हिन्दू हिन्दू के नाम पर जातीय एकता स्थापित करना चाहते हैं। किन्तु, वह हिन्दू जातीयता है कहाँ? हिन्दू जाति तो एक काल्पनिक शब्द है। वस्तुतः वहाँ हैं ब्राह्मण—ब्राह्मण भी नही, शाकद्वीपी, सनाढ्य, जुझौतिया—राजपूत, खत्री, भूमिहार, कायस्थ, चमार आदि-आदि ''। एक राजपूत का खाना-पीना, व्याह-श्राद्ध अपनी जाति तक सीमित रहता है। उसकी सामाजिक दुनिया अपनी जाति तक महदूद है। इसीलिए जब एक राजपूत बड़े पद पर पहुँचता है, तो नौकरी दिलाने, सिफारिश करने या दूसरे तौर से सबसे पहले अपनी जाति के आदमी को फायदा पहुँचाना चाहता है। यह स्वाभाविक है। जब कि चौबीसो घण्टे मरने-जीने सब मे साथ सम्बन्ध रखने वाले अपनी बिरादरी के लोग हैं, तो फिर किसी की दृष्टि दूर तक कैसे जायगी?

कहने के लिए तो हिन्दुओ पर ताना कसते हुए इस्लाम कहता है कि हमने जात-पॉत के बधनो को तोड दिया। इस्लाम मे आते ही सब भाई-भाई हो जाते हैं। लेकिन, क्या यह बात सच है? यदि ऐसा होता तो आज मोमिन (जुलाहा), अन्सार (धुनिया), राइन (कुजडा) आदि का सवाल न उठता। अर्जल और अशरफ का शब्द किसी के मुँह पर न आता। सैयद-शेख, मलिक-पठान, उसी तरह का ख़्याल अपने से छोटी जातियों से लिए रखते हैं, जैसा कि हिन्दुओ के बड़ी

जातवाले। खाने के बारे मे छूत-छात कम है, और वह तो अब हिन्दुओ में भी कम होती जा रही है। लेकिन सवाल तो है—सास्कृतिक और आर्थिक क्षेत्र मे इस्लाम की बड़ी जातों ने छोटी जातो को क्या आगे बढ़ने का कभी मौका दिया? धार्मिक नेता हो तो बड़ी-बड़ी जातो से, शाही दरबारो और सरकारी नौकरियॉ सभी जगहे बड़ी जातों के लिए सुरक्षित रही। ज़मींदार, ताल्लुकेदार, नवाब सभी बड़ी जातो के हैं। हिन्दुस्तानियो मे से चार-पॉच करोड़ आदमियों ने हिन्दुओ के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अत्याचारों से त्राण पाने के लिए इस्लाम की शरण ली। लेकिन, इस्लाम की बडी जातो ने क्या उन्हे वहॉ पनपने दिया? सात सौ बरस बाद भी आज गॉव का मोमिन, ज़मीदारो और बड़ी जातो के ज़ुल्म का वैसा ही शिकार है, जैसा कि उसका पडोसी कानू-कुर्मी। हिन्दुओं से झगड़ कर अंग्रेज़ो की ख़ुशामद करके कौन्सिलो की सीटो, सरकारी नौकरियो मे अपने लिए सख्या सुरक्षित करायी जाती है। लेकिन, जब उस सख्या को अपने भीतर वितरण करने का अवसर आता है, तब उनमे से प्रायः सभी को बडी जातवाले सैयद और शेख़ अपने हाथ मे ले लेते हैं। साठ-साठ सत्तर-सत्तर फी सदी सख्या रखने वाले मोमिन और अन्सार मुँह ताकते रह जाते हैं। बहाना किया जाता है कि उनमे उतनी शिक्षा नही। लेकिन सात सौ और हजार बरस बाद भी यदि वे शिक्षा मे इतने पिछड़े हुए हैं, तो इसका दोष

किसके ऊपर है ? उन्हे कब शिक्षित होने का अवसर दिया गया ? जब पढाने का अवसर आया, छात्र-वृत्ति देने का मौक़ा आया, तब तो ध्यान अपने भाई-बन्धुओं की तरफ चला गया। मोमिन और अन्सार, बावर्ची और चपरासी, ख़िदमतगार और हुक्काबरदार के काम के लिए बने हैं। उनमे से कोई यदि शिक्षित हो भी जाता है, तो उसकी सिफारिश के लिए अपनी जाति मे तो वैसा प्रभावशाली व्यक्ति है नही; और, बाहर वाले अपने भाई-बन्धु को छोड़ कर उन पर तरजीह क्यो देने लगे ? नौकरियो और पदो के लिए इतनी दौड-धूप, इतनी जद्दोजहद सिर्फ खिदमते-क़ौम और देश-सेवा के लिये नही है, यह है रुपयों के लिए, इज्जत और आराम की जिंदगी बसर करने के लिए।

हिन्दू और मुसलमान फरक-फरक धर्म रखने के कारण क्या उनकी अलग जाति हो सकती है ? जिनकी नसो मे उन्ही पूर्वजो का ख़ून बह रहा है, जो इसी देश मे पैदा हुए और पले, फिर दाढी और चुटिया पूरब और पच्छिम की नमाज क्या उन्हे अलग कौम साबित कर सकती है ? क्या खून पानी से गाढा नही होता ? फिर हिन्दू और मुसलमान के फरक़ से बनी इन अलग-अलग जातियो को हिन्दुस्तान से बाहर कौन स्वीकार करता है ? जापान मे जाइये या जर्मनी, ईरान जाइये या तुर्की,—सभी जगह हमे हिन्दी और 'इन्डियन' कह कर पुकारा जाता है। जो धर्म भाई को

वेगाना बनाता है, ऐसे धर्म को धिक्कार! जो मज़हब अपने नाम पर भाई का ख़ून करने के लिए प्रेरित करता है, उस मजहब पर लानत! जब आदमी चुटिया काट दाढ़ी बढ़ाने भर से मुसलमान और दाढ़ी मुड़ा चुटिया रखने मात्र से हिन्दू मालूम होने लगता है, तो इसका मतलब साफ है कि यह भेद सिर्फ बाहरी और बनावटी है। एक चीनी चाहे बौद्ध हो या मुसलमान, ईसाई हो या कनफूसी, लेकिन उसकी जाति चीनी रहती है; एक जापानी चाहे बौद्ध हो या शिन्तो-धर्मी, लेकिन उसकी जाति जापानी रहती है; एक ईरानी चाहे वह मुसलमान हो या ज़रतुस्ती, किन्तु वह अपने लिये ईरानी छोड़ दूसरा नाम स्वीकार करने के लिये तैयार नही। तो हम हिन्दियो को मजहब टुकड़े-टुकड़े मे बॉटने को क्यो तैयार है, और उसकी इन नाजायज हरकतो को हम क्यो बर्दाश्त करे?

धर्मों की जड़ मे कुल्हाडा लग गया है, और, इसलिए अब मज़हबों के मेल-मिलाप की भी बाते कभी-कभी सुनने मे आती हैं। लेकिन, क्या यह सम्भव है? "मजहब नही सिखाता आपस मे बैर रखना"—इस सफेद झूठ का क्या ठिकाना! अगर मज़हब बैर नही सिखलाता तो चोटी-दाढी की लडाई मे हज़ार बरस से आज तक हमारा मुल्क पामाल क्यों है? पुराने इतिहास को छोड दीजिये, आज भी हिन्दुस्तान के शहरो और गॉवो मे एक मज़हब वालों को दूसरे मज़हब वालो के ख़ून का प्यासा कौन बना रहा है? कौन गाय खानेवालों से

गोबर खानेवालो को लडा रहा है ? असल बात यह है—
"मजहब तो है सिखाता आपस मे बैर रखना। भाई को है
सिखाता भाई का खून पीना।" हिन्दुस्तानियों की एकता
मज़हबो के मेल पर नही होगी; बल्कि मजहबो की चिता पर।
कौए को धोकर हस नही बनाया जा सकता। कमली को धोकर
रग नही चढाया जा सकता। मजहबों की बीमारी स्वाभाविक
है। उसका, मौत को छोड कर, कोई इलाज नही।

एक तरफ तो ये मजहब एक दूसरे के इतने ज़बर्दस्त,
खून के प्यासे हैं। उनमे से हरएक एक-दूसरे से ख़िलाफ़
शिक्षा देता है। कपडे-लत्ते, खाने-पीने, बोली-बानी, रीति-रवाज
मे हरएक एक-दूसरे से उल्टा रास्ता लेता है। लेकिन जहाँ
गरीबो को चूसने और धनियो की स्वार्थरक्षा का प्रश्न आ
जाता है, तो दोनो एक बोली बोलते हैं। गदहा-गाँव के
महाराज बेवक़ूफ़ बख़्श सिह सात पुश्त से पहले दर्जे के बेवक़ूफ़
चले आते हैं। आज उनके पास पचास लाख सालाना आम-
दनी की जमींदारी है, जिसको प्राप्त करने मे न उन्होने एक
धेला अकल खर्च की और न अपनी बुद्धि के बल पर उसे
छै दिन चला ही सकते हैं। न वे अपनी मेहनत से धरती से
एक छटाँक चावल पैदा कर सकते हैं, न एक ककड़ी गुड।
महाराज बेवकूफ बख़्श सिंह को यदि चावल, गेहूँ, घी, लकडी
के ढेर के साथ एक जगल मे अकेले छोड दिया जाये, तो भी
उनमे न इतनी बुद्धि है और न उन्हे काम का ढग मालूम है

कि अपना पेट भी पाल सके, सात दिन मे बिलला-बिलला कर जरूर वे वही मर जायेगे। लेकिन आज गदहा-गाँव के महाराज दस हज़ार रुपया महीना तो मोटर के तेल मे फूँक डालते हैं। बीस-बीस हज़ार रुपये जोड़े के सौ जोड़े कुत्ते उनके पास हैं। दो लाख रुपये लगाकर उनके लिए महल बना हुआ है। उन पर अलग डाक्टर और नौकर है। गर्मियों में उनके घरो मे बरफ के टोकरे और बिजली के पखे लगते हैं। महाराज के भोजन-छाजन की तो बात ही क्या ? उनके नौकरों के नौकर भी घी-दूध मे नहाते हैं, और जिस रुपये को इस प्रकार पानी की तरह बहाया जाता है, वह आता कहाँ से है ? उसके पैदा करने वाले कैसी जिन्दगी विताते हैं ?—वे दाने-दाने को मुहताज़ हैं। उनके लड़को को महाराज बेवकूफ बख़्श के कुत्तो का जूठ भी यदि मिल जाये, तो वे अपने को धन्य समझे।

लेकिन, यदि किसी धर्मानुयायी से पूछा जाय, कि ऐसे बेवकूफ आदमी को बिना हाथ-पैर हिलाये दूसरे की कसाले की कमाई को पागल की तरह फूँकने का क्या अधिकार है, तो पडित जी कहेगे—"अरे वे तो पूर्व की कमाई खा रहे हैं। भगवान् की ओर से वे बड़े बनाये गये हैं। शास्त्र-वेद कहते हैं कि बड़े-छोटे के बनाने वाले भगवान् हैं। गरीब दाने-दाने को मारा-मारा फिरता है, यह भगवान् की ओर से उसको दण्ड मिला है।" यदि किसी मौलवी या पादरी से पूछिये तो जवाब मिलेगा—"क्या तुम काफिर हो, नास्तिक तो नही हो ? अमीर-ग़रीब

दुनिया का कारबार चलाने के लिये ख़ुदा ने बनाये हैं। राज़ी ब-रजा, ख़ुदा की मर्जी मे इन्सान को दखल देने का क्या हक। गरीबी को न्यामत समझो। उसकी बदगी और फरमॉबरदारी बजा लाओ, कयामत मे तुम्हे इसकी मजदूरी मिलेगी।" पूछा जाय—जब बिना मेहनत ही के महाराज बेवकूफ बख़्श सिंह धरती पर ही स्वर्ग का आनन्द भोग रहे हैं, तो ऐसे 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' के दरबार मे बंदगी और फरमॉबरदारी से कुछ होने-हवाने की क्या उमीद ?

उल्लू शहर के नवाब नामाकूल ख़ॉ भी बड़े पुराने रईस हे। उनकी भी जमीदारी है और ऐशो-आराम बेवकूफ बख़्श सिह से कम नही हैं। इनके पाख़ाने की दीवारों मे अतर चुपडा जाता है और गुलाब-जल से उसे धोया जाता है। सुन्दरियों और हुस्न की परियों को फॅसा लाने के लिए उनके सैकडो आदमी देश-विदेशों मे घूमा करते है। यह परियॉ एक ही दीदार मे उनके लिये बासी हो जाती हैं। पचासो हकीम, डाक्टर और वैद्य उनके लिये जौहर, कुश्ता और रसायन तैयार करते रहते हैं। दो-दो सौ साल की पुरानी शराबे पेरिस और लडन के तहख़ानों से बडी-बडी क़ीमत पर मॅगा कर रक्खी जाती हैं। नवाब बहादुर का तलवा इतना लाल और मुलायम है, जितनी इन्द्र की परियो की जीभ भी न होगी। इनकी पाशविक काम-वासना की तृप्ति मे बाधा डालने के लिए कितने ही पति तलवार के घाट उतारे जाते हैं, कितने ही पिता झूठे मुकदमे मे फॅसा क़ैदख़ाने मे सड़ाये

जाते हैं। साठ लाख सालाना आमदनी भी उनके लिये काफी नही है। हर साल दस-पाँच लाख रुपया और कर्ज़ हो जाता है। आपको G. C. S. I, G. C. I. E, फर्जिन्द-ख़ास-फिरग—आदि बडी-बड़ी उपाधियाँ सरकार की ओर से मिली हैं। वायसराय के दरबार मे सबसे पहले कुर्सी इनकी होती है और उनके स्वागत मे व्याख्यान देने और अभिनन्दन-पत्र पढने का काम हमेशा उल्लू शहर के नवाब बहादुर और गदहा-गाँव के महाराजा बहादुर को मिलता है। छोटे और बड़े दोनों लाट इन दोनो रईसुल्उमरा की बुद्धिमानी, प्रबन्ध की योग्यता और रियाया-परवरी की तारीफ करते नही अघाते।

नवाब बहादुर की अमीरी को ख़ुदा की बरकत और कर्म का फल कहने मे पडित और मौलवी, पुरोहित और पादरी सभी एक राय हैं। रात-दिन आपस मे तथा अपने अनुयायियो मे ख़ून-ख़राबी का बाज़ार गर्म रखनेवाले, अल्लाह और भगवान् यहाँ बिलकुल एक मत रखते हैं। वेद और कुरान, इजील और बायबिल की इस बारे मे सिर्फ एक शिक्षा है। खून चूसनेवाली इन जोको के स्वार्थ की रक्षा ही मानो इन धर्मों का कर्त्तव्य हो। और, मरने के बाद भी बहिश्त और स्वर्ग के सबसे अच्छे महल, सबसे सुन्दर बग़ीचे, सबसे बडी आँखों वाली हूरे और अप्सराएँ, सबसे अच्छी शराब और शहद की नहरे उल्लू शहर के नवाब बहादुर तथा गदहा-गाँव के महाराज और उनके भाई-बन्धुओं के लिए रिजर्व हैं, क्योंकि उन्होंने दो-चार मजिस्जदे-

दो-चार शिवाले बना दिये हैं कुछ साधु-फकीर और ब्राह्मण-मुजावर रोजाना उनके यहाँ हलवा-पूडी, कबाब-पुलाव उड़ाया करते है।

गरीबों की ग़रीबी और दरिद्रता के जीवन का कोई बदला नहीं। हाँ, यदि वे हर एकादशी के उपवास, हर रमज़ान के रोज़े तथा सभी तीरथ-ब्रत, हज और जियारत बिना नागा और बिना वेपरवाही से करते रहे, अपने पेट को काट कर यदि पंडे-मुजावरों का पेट भरते रहे, तो उन्हें भी स्वर्ग और वहिश्त के किसी कोने की कोठरी तथा बची-खुची हूर-अप्सरा मिल जायेगी। गरीबों को बस इसी स्वर्ग की उम्मीद पर अपनी ज़िन्दगी काटनी है। किन्तु जिस सरग-वहिश्त की आशा पर ज़िन्दगी भर के दुख के पहाडो को ढोना है, उस सरग-वहिश्त का अस्तित्व ही आज बीसवीं सदी के इस भूगोल मे कही नही है। पहले ज़मीन चपटी थी। सरग इसके उत्तर के सात पहाडों और सात समुद्रों को पार कर था। आज तो न उस चपटी जमीन का पता है और न उत्तर के उन सात पहाड़ो और सात समुद्रों का। जिस सुमेरु के ऊपर इन्द्र की अमरावती, क्षीरसागर के भीतर शेषशायी भगवान् थे, वह अब सिर्फ लडकों के दिल बहलाने की कहानियाँ मात्र हैं। ईसाइयों और मुसलमानो के वहिश्त के लिये भी उसी समय के भूगोल मे स्थान था। आज-कल के भूगोल ने तो उनकी जड ही काट दी है। फिर उस आशा पर लोगो को भूखों रखना क्या भारी धोखा नही है?

३

तुम्हारे भगवान् की क्षय

लडका माँ के पेट से ईश्वर का ख़्याल लेकर नही निकलता। भूत, प्रेत तथा दूसरे संस्कारो की तरह ईश्वर का ख़्याल भी लड़के को माँ-बाप तथा आसपास के सामाजिक वातावरण से मिलता है। दुनियाँ के धर्मों मे बौद्ध धर्म के अनुयायी अब भी सब से ज्यादा हैं, लेकिन उनके दिल मे सृष्टिकर्ता का ख़्याल भी नहीं उठता। रूस की नब्वे फी सदी जनता भी ईश्वर के फंद से दूर हट चुकी है, और अब कुछ बूढों को छोड कर यह ख़्याल किसी को नही सताता। यह निश्चय है कि आज के बूढ़ों के मर जाने पर ईश्वर का नामलेवा वहाँ कोई नही रह जायगा। हिन्दुस्तान मे प्रार्थना-प्रदर्शनो और हरिकीर्त्तनो को देखकर कुछ लोग समझते हैं, कि ईश्वर का ख़्याल फिर से ज़ोर पकड रहा है। उन्हे मालूम नहीं कि जिन लोगो में ईश्वर-विश्वास है भी, उनमे भी अब उसकी व्यापकता बहुत कम हो गई है।

जिस समस्या, जिस प्रश्न, जिस प्राकृतिक रहस्य के जानने मे आदमी अपने को असमर्थ समझता था, उसी के लिए वह ईश्वर का ख़्याल कर लेता था। दर-असल ईश्वर का ख़्याल है भी तो अन्धकार की उपज। प्रारम्भिक मनुष्य जब घर बना

कर नहीं रहता था, अपनी रक्षा के लिए जब उसके पास कुछ अनगढ़ पत्थरो के अतिरिक्त कुछ न था, और साथ ही उस वक्त सारी भूमि जगल से भरी थी, जिसमे सिंह, बाघ, हाथी, भेड़िया आदि बड़े-बड़े हिंस्र पशु घूमा करते थे। दिन मे भी वृक्षा के ऊपर चढ कर, गुफाओ के भीतर छिप कर, बहुत सजग रह वह किस तरह अपनी जान को बचाता था। अँधेरे मे अपनी ताक मे बैठे जन्तुओ का डर तो उसे बदहवास किये रहता था। इस प्रकार वह अन्धकार प्राकृतिक मनुष्य से आज तक भय का कारण बना हुआ है। हाँ, जब आगे चल कर मनुष्य ने भाषा का विकास किया, विचारो को प्रकट करने के लिए उसके पास कुछ शब्दकोष बना और जब हर पीढी अपने अनुभवो की कटु स्मृतियों को अगली पीढी तक पहुँचाने लगी तो वास्तविक की अपेक्षा कल्पना-जात भय की सख्या बहुत बढ़ गई। जीवन भर अपने बलिष्ठ शासक और नेता से मनुष्य थर-थर काँपता था। वह अपने आश्रितो के साथ बात की अपेक्षा लात से ही अधिक काम लेता था। इस साधारण शिक्षा-दीक्षा मे कितने काने, कितने लगड़े हो और कितने जान से हाथ धो बैठते थे। ऐसे निर्दय स्वामी और मुखिया का भय उसके मरने के बाद भी लोगो के दिल से नहीं हटता था। मरने के बाद उसे वे अपनी बस्तियों में किसी वृक्ष पर या किसी चबूतरे पर अधिष्ठित मानने लगते थे। अँधेरा होने पर किसी वक्त उसके प्रकट होने का डर था। अज्ञात भय

ने इस प्रकार देवता का रूप धारण किया। और, ये ही विचार आगे चल कर महान् देवता (महादेव) या ईश्वर के रूप मे परिणत हुए।

प्रारंभिक मनुष्य का मानसिक विकास अभी निम्न तल पर था। उसकी शंकाऍ हल्की और समाधान—सरल थे। वर्षा क्यो होती है ? पर्ज्जन्यदेवता के नेतृत्व मे मेघसमूह किसी जलाशय या पहाड मे चरने जाते हैं, वह वहॉ से पानी लेकर पर्ज्जन्य के आज्ञानुसार जगह-जगह बरसाते है। इन्द्र पर्ज्जन्य का स्वामी है। वह कभी-कभी वज्र को चला कर अपना रोष प्रकट करता है। यही अशनि या बिजली है। पहाड़ो की आकृति को मेघ से मिलते-जुलते देख कर उस समय लोग समझते थे—ये पहाड ही हैं जो आकाश मे मेघ के रूप मे उड़ रहे हैं। उनके विश्वास मे पर्वतो के पर भी होते थे, जिन्हे इन्द्र ने नाराज होकर किसी समय अपने वज्र से काट दिया। प्रातःकाल पूर्व दिशा मे पौ फटने के साथ लाली क्यों छा जाती है ? यह उषा, स्वर्ग की देवी का प्रताप है। उस वक्त सूर्य अपने प्रखर प्रकाश के कारण प्रचण्ड देवता था और वह सात घोड़ो के रथ पर त्रिभुवन की यात्रा के लिए निकलता था। आग के पास बड़े-बड़े हिंस्र पशु नही आ सकते। प्रकाड वृक्षो और महान् जगलों को वह धॉय-धॉय कर के जला देती है। इसलिए अग्नि, प्रत्यक्ष महान् (ब्रह्म) था, उसी को वे प्रत्यक्ष महान् कहते थे। नदी, समुद्र सभी उस मनुष्य के लिए देवता थे, क्योकि उनमे वे अमानुषिक

धर्मों, भाषाओं और कथानको के तुलानात्मक अध्ययन से मालूम होता है, कि सृष्टिकर्त्ता एक ईश्वर का ख़्याल मनुष्य मे बहुत पीछे से आया है। दुनिया की सबसे अधिक समुन्नत जातियॉ—यूनानी, रोमन, हिन्दू, चीनी, मिश्री आदि तो बल्कि अपनी समृद्धि के मध्याह्न काल तक इसे अपनाने के लिए तैयार नहीं हुई, और उनमे से यदि किसी ने इस ख़्याल को माना भी तो सामीय धर्मवालो की तरह वैयक्तिक ईश्वर के रूप मे नहीं, बल्कि विश्वरूप ईश्वर के आकार मे।

अज्ञान का ही दूसरा नाम ईश्वर है। हम अपने अज्ञान को साफ़ स्वीकार करने मे शर्माते हैं, अत॰ उसके लिए सभ्रान्त नाम 'ईश्वर' ढूँढ निकाला गया है। ईश्वर-विश्वास का दूसरा कारण मनुष्य की असमर्थता और बेबसी है।

आये दिन हर तरह की विपत्तियो, प्राकृतिक दुर्घटनाओं, शारीरिक और मानसिक बीमारियो से असह्य वेदना सहते-सहते जब मनुष्य बचने का कोई रास्ता नहीं देखता, तब यह कह कर संतोष करना चाहता है, कि ईश्वर की यही मर्ज़ी है; वह जो कुछ करता है, अच्छा करता है, वह हमारी परीक्षा ले रहा है, भविष्य के सुख को और भी मधुर बनाने के लिए उसने यह प्रबन्ध किया है। अज्ञान और असमर्थता के अतिरिक्त यदि कोई और भी आधार ईश्वर-विश्वास के लिए है, तो वह है धनिको और धूर्तों की अपनी स्वार्थ-रक्षा का प्रयास। समाज ने होते हजारो अत्याचारों और अन्यायो को वैध साबित करने के

नज़दीक मालूम हुआ है; वह इतना दूर है कि उसकी किरण को हम तक पहुँचने मे ढाई बरस लगते हैं। ध्रुव तारा हमसे बहुत दूर नहीं है, तो भी उसके जिस रूप को हम इस वक्त देख रहे हैं, वह आज से पचास बरस पहले का है। दस-दस बीस-बीस हज़ार बरस मे अपनी किरणो को हम तक पहुँचाने वाले तारों की भारी संख्या से हमे आश्चर्य करने की जरूरत नहीं। नक्षत्र-मंडल मे ऐसे भी तारे हैं, जिनकी दूरी को किरणों की यात्रा को वर्षों की सख्या मे बतलाना मुश्किल है। तारो, ख-गोल और प्राकृतिक जगत् के सम्बन्ध की अपनी इस अज्ञानता को मनुष्य देवता और ईश्वर की आड में छिपाता था।

भूकम्प क्यो होता है? चिपटी धरती के महान् भार को शेष ने अपने कन्धे पर उठा रखा है। थक कर वे जब उसे एक कन्धे से हटा कर दूसरे पर रखते हैं, तब भूकम्प आता है। आज कौन इस व्याख्या को मान सकता है? कौन चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण को राहु-दैत्य का अत्याचार बतला सकता है? लेकिन किसी समय हमारे पूर्वजों के लिए ये बाते ध्रुव सत्य थी। विज्ञान ने हमारे अज्ञान की सीमा को कितनी ही दिशाओ मे बहुत सकुचित किया है, और जितनी ही दूर तक हमारे ज्ञान की सीमा बढ़ती गई, वहाँ से ईश्वर और देवता वाला उत्तर हटता गया है। अब भी अज्ञान का क्षेत्र बहुत लम्बा-चौड़ा है, लेकिन आज के मनीषी उसे साफ़ अज्ञान के रूप मे स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, न कि ईश्वर और देवता के पर्दे मे उसे छिपा कर।

"जिस दिन बाबूजी कचहरी मे वकालत करने नहीं जाते, उस दिन क्यो नहीं उनकी जेब मे रुपये आ जाते ?" लड़कों को समाज के दुरूह संगठन का उतना पता नहीं होता और जूए के खेल की तरह किस तरह वास्तविक न्याय न करके सौ को हराकर दो को जिताया जाता है, इसका भी उन्हें पता नहीं। इसलिए उन्होंने उस तरह के प्रश्नोत्तर नहीं उठाये। हाँ, उन्हें यह मालूम हो गया कि जहाँ तक खाने-कपड़े, मकान, खेल-तमाशे में खर्च देने का सवाल है, उसका माता-पिता और अभिभावकों द्वारा ही हल होता है। वहाँ ईश्वर की सहायता संदिग्ध-सी जान पड़ती है। लेकिन, जब उनसे पूछा गया—"तुम्हे सिर-दर्द कौन देता है—माँ-बाप या सगे-सम्बन्धी ?"—"वे तो विह्वल हो जाते हैं, अम्मा और बाबूजी क्यो ऐसा चाहेंगे ?" यहाँ उन्हे ईश्वर का हाथ होना आसानी से स्वीकार कराया जा सका।

"और पेट दर्द ?"—"ईश्वर देता है।"

"यक्ष्मा से घुला-घुला कर तुम्हारे पड़ोसी को किसने मारा ?"—"ईश्वर ने।"

'सात दिन के बच्चे की माँ को मार कर कौन उसे अनाथ करता है ?"—"ईश्वर।"

"माँ के एकलौते बच्चे को मार कर कौन उसे ऐसा विलाप करने को मजबूर करता है, जिसे सुन कर पशु-पक्षी और पत्थर तक का हृदय पिघल जाता है ?"—"ईश्वर।"

लिए उन्होंने ईश्वर का बहाना ढूँढ निकाला है। धर्म की धोखा-धड़ी को चलाने और उसे न्याय साबित करने के लिए ईश्वर का ख़्याल बहुत सहायक है। इस सम्बन्ध मे धर्म के प्रकरण मे हम कुछ कह आये हैं, इसलिए फिर से उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता नही जान पडती।

ईश्वर का विश्वास एक छोटे बच्चे के भोले-भाले विश्वास से बढकर कुछ नहीं है। अन्तर इतना ही है, कि छोटे बच्चे का शब्द-कोष, दृष्टान्त और तर्क शैली सीमित होती है, और बड़ो की कुछ विकसित। बस, इसी विशेषता का फरक हम दोनो मे पाते हैं। एक बार तीन छोटे-छोटे बच्चो ने मुझसे ईश्वर के सम्बन्ध मे बातचीत की। उनकी उमर सात और दस बरस के बीच की थी। पूछा कि ईश्वर कहाँ रहता है, उत्तर मिला—'आकाश मे।' धरती मे कहने से प्रत्यक्ष दिखलाने की जरूरत पडती, क्योंकि धरती प्रत्यक्ष की सीमा के भीतर है। आकाश अज्ञान की सीमा के अन्तर्गत है, इसलिए वहाँ उसका अस्तित्व अधिक सुरक्षित है। ईश्वर के रग-रूप के बारे मे लडको का एक मत न था। कोई उसे अपनी शक्ल का बतलाते थे और कोई विचित्र शक्ल का। "ईश्वर क्या करता है?"—यह सबसे मुख्य प्रश्न था। इसे लडके भी अनुभव करते थे क्योंकि जिस वस्तु का आकार प्रत्यक्ष नही होता, उसकी सत्ता उसकी क्रिया से ही सिद्ध हो सकती है। लड़कों ने कहा—"वह हमें भोजन देता है"। "और तुम्हारे बाबूजी?"—"बाबूजी को ईश्वर देता है।"

की विशाल मछलियों तक अरबो योनियाँ हैं। उनमे अधिकाश शख-महाशख तक प्राणी अपने मे रखती हैं। कहा जाता है कि जो मनुष्य यहाँ, इस लोक में, निकृष्ट कर्म करता है, वही पर-लोक या पर-जन्म मे इन निकृष्ट योनियों मे, दण्ड पाने के लिये पैदा होता है, पर यह बात टिकती नहीं, क्योंकि इस पृथ्वी पर मनुष्य की सारी सख्या डेढ़ अरब के ही आस-पास है। फिर डेढ अरब मनुष्यो के पुरखिले कर्म को भोगने के लिए इतनी अधिक सख्या मे जीव कैसे पैदा हो सकते हैं? ईश्वर ने इन असख्य जीवो को सिर्फ यत्रणा और कष्ट के लिए पैदा करके क्या अपनी कृपा का परिचय दिया? इन्साफ तो उसमे छू नहीं गया, बल्कि उसके इस कर्म से तो यही पता लगता है कि उससे बढ कर ज़ालिम और पाषाण-हृदय दुनिया मे और कहीं नहीं मिल सकता। शेर भी हिरण का शिकार करता है, अपनी भूख को दूर करने के लिए। छिपकली फतिंगे को दबोचती है, पेट भरने के लिए। सभी ज़ीवधारी दूसरे जीव को आत्मरक्षा और जीवन धारण के लिए मारते है। वे भरसक तडपा-तडपा कर मारना भी पसद नहीं करते। लेकिन ईश्वर जिनको मारता है क्या उनके मास से वह अपनी भूख को शान्त करता है, या आत्मरक्षा के लिए उसे वैसा करना आवश्यक मालूम होता है? इन दोनों के न होने पर सिर्फ खेल के लिए ऐसा घोर कृत्य ईश्वर को क्या बतलाता है?

"चैत-वैशाख के दिनों मे एक-एक आम के ऊपर दस-दस करोड़ कीड़ों को सिर्फ धूप और हवा मे मरने का मजा चखने के लिए कौन पैदा करता है? कौन बरसात के दिनों में धरती पर असख्य मच्छरो, कीड़ो-मकोड़ो को तड़प-तडप कर मरने के लिए पैदा करके अपनी असीम दया का परिचय देता है?"

—"ईश्वर।"

"तब तो उसमे दया बिलकुल नही। उतनी भी दया नहीं, जितनी कि क्रूर से क्रूर आदमी मे संभव हो सकती है। रोते-तड़पते बच्चे को देखकर पत्थर का दिल भी पिघल जाता है। तुम भी·····की माँ को उस दिन नन्हे बच्चे के मरने पर रोती देखकर अफसोस करते थे कि नही?"

"मै भी रो रहा था। कैसा सुन्दर लडका, उसका गोल मटोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखे और बिना दँतली के मुँह के हँसते वक्त गालों मे पड़े गड्ढे अब भी बडे सुन्दर याद आते हैं।"

"ऐसे बच्चे को मारनवाला कौन—आदमी या राक्षस?"

"राक्षस से भी ख़राब।"

हाँ, दुनिया मे प्राणियों के सुख की घड़ियाँ कम और दुख की अधिक हैं। एक मच्छरो की ही योनि ले ली जाय, तो उसकी सख्या शख-महाशख से भी ऊपर चली जायगी और इस तरह की योनियाँ भी हमारी इस पृथ्वी पर अरबों होंगी। अत्यन्त छोटे, दूरबीन से दिखाई देनेवाले कीड़े से लेकर समुद्र

शाह थे। सच तो यह है कि यदि वनिक ही हमारे सदाचार के आदर्श माने जायँ, तो ऐसे सदाचार का तो न रहना ही भला है। एक पुरुष एक स्त्री के रहते दो-दो, चार-चार और अधिक भी विवाह कर सकता है, तो भी हिन्दू और इस्लाम धर्म के अनुसार उनके सदाचारी होने में कोई शंका नहीं उठ सकती; लेकिन इन धर्मों के अनुसार इसी स्वतंत्रता को लेकर यदि कोई स्त्री एक साथ दो पति रक्खे तो वह दुराचार हो जायगा। आख़िर दुनिया में ऐसे भी देश हैं, जहाँ एक स्त्री का एक साथ कई पति रखना ज़रा भी अनुचित नहीं समझा जाता। तिब्बत मे यह प्रथा आम है। वहाँ शायद ही कोई स्त्री मिलेगी, जिसके अनेक पति न हों। और, यह बात तो हमारे पुराने इतिहास में भी मिलती है। पाँच पति रखने पर भी द्रौपदी भारत की प्रातःस्मरणीय पंचकन्याओं मे से थी। आख़िर इसमें सदाचार है क्या? बहुत से देश हैं, जहाँ पुराने समय से आज तक बहुपति-विवाह, बहुपत्नी-विवाह विहित समझा गया है। और बहुत से ऐसे देश हैं, जहाँ बहुपत्नी-विवाह को उतना ही अनुचित समझा जाता है, जितना कि बहुपति-विवाह को। यूरोप, अमेरिका, जापान ऐसे ही देशों में हैं। न्याय की दृष्टि से देखने पर तो यह साफ़ मालूम पड़ता है, कि यदि एक स्त्री का अनेक पति होना ख़राब है तो एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ होना भी उतना ही ख़राब है। आजकल के जीवित प्रधान धर्मों में कोई भी ऐसा नहीं है, जो सिर्फ़ एक पति-विवाह और एक पत्नी-विवाह

४

तुम्हारे सदाचार की क्षय

(१) व्यभिचार

सद्-आचार अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का आचार। श्रेष्ठ किसे कहते हैं ? क्या श्रेष्ठ की कोटि मे उस गरीब की गिनती हो सकती है, जो ईमानदारी से की गई अपनी कमाई को खाने का हक न रखकर दाने-दाने को मुहताज़ है ? नहीं, श्रेष्ठ से मतलब है पुराने-नये राजा, राजऋषि, बड़े-बड़े राजाओं के पुरोहित और गुरु-ऋषि-मुनि; जिन्होंने कि सदाचार-प्रतिपादक शास्त्र और स्मृतियाँ बनाई हैं। श्रेष्ठ से मतलब है पीर-पैगम्बर, मूसा-दाऊद से, जो कि ख़ुद राजा या शासक थे, अथवा किसी दूसरे तरीक़े से बहुत जन-धन के स्वामी बन गये थे। ऐसे "श्रेष्ठ" पुरुषो का चाल-व्यवहार तो दुनिया का सदाचार बना हुआ है। उनके सदाचार भी एक तरह के नही हे। कही सोलह-सोलह हजार स्त्रियाँ कृष्ण और दशरथ जैसे सदाचारियो के यहाँ बतलाई जाती हैं। सुलेमान, दाऊद तथा दूसरे सामीय पैगम्बर भी इस बारे मे बहुत "उदार" थे। आज भी हमारे यहाँ वाज़िद अली शाहो की कमी नही है। अभी हाल ही में एक महाराजा मरे हैं, जो कि इस बारे मे दूसरे वाजिद अली

सिर्फ वही एक देश पायेंगे, जहाँ से वेश्यावृत्ति एक दम उठ गई है। क्या हमारे देश मे ऐसे सदाचार की खिल्ली उड़ाने वाले सबसे ज्यादा हिन्दू-तीर्थ और हिन्दू-मठ नही हैं? अयोध्या मे चले जाइये और वहाँ के बडे से बड़े अवतारी भगवद्भक्त और सिद्ध महात्मा को ले लीजिए, उनके बारे में भी पूछ लीजिए कि जिन्हे मरे अभी कुछ ही साल हुए है। मालूम होगा, सदाचार के सम्बन्ध मे कैसे-कैसे वीभत्स काण्ड वहाँ होते है। ये स्थान स्वाभाविक ही नही, अस्वाभाविक व्यभिचार के सबसे बड़े अड्डे हैं। बाहर से जानेवाली भोली-भाली जनता, जिन पर तप, ब्रह्मचर्य, सदाचार की साक्षात् मूर्ति समझ कर अपना तन-मन-धन वारती है, वे है जघन्य, कामुकता के साक्षात् अवतार। ऐसे आदमियो के मुँह से ब्रह्मचर्य और सदाचार के लम्बे-लम्बे उपदेश सुनकर तो हठात् कहना पडता है—निर्लज्जता, तेरा बेडा गर्क हो। साधु-सन्यासियों के इस विषय के क्रियात्मक विचार उससे बिल्कुल ही दूसरे हैं, जैसा कि वे उनके श्रीमुख से निकलते है। भारत मे कितनी ही धर्ममडलियाँ गुप्त व्यभिचार मे आसानी पैदा करने के लिए क़ायम हुई है, कितने ही भगवद्-भवन और भजनाश्रम लोगो की आँखो मे धूल झोकने को स्थापित हुए है। चाहे युक्तप्रान्त मे घूमिये चाहे गुजरात मे, चाहे पजाब को देखिये चाहे बगाल को, चाहे नेपाल को जाइये, चाहे मद्रास को, सभी के घर मे मिट्टी का चूल्हा है, सभी नाग-नाथ साँपनाथ बराबर हैं। सदाचार मे जो जितना ही पतित है,

को ही उचित ठहराता हो तथा दोनों तरह के बहुविवाहो का निषेध करता हो।

लेकिन यह यौन-सदाचार सिर्फ बाहरी बात है। भीतर देखने पर तो हालत और भी बीभत्स मालूम देती है। हरएक धनी और शक्तिशाली व्यक्ति पुराने समय से आज तक विवाहिता स्त्रियो के अतिरिक्त भी अनेक दासियों और रखेलियों रखता आया है, और वेश्यावृत्ति तो लक्ष्मी की शोभा समझी जाती है। यदि पुरुष उतनी ही चंचलता दिखलाये तो वह मर्द-बच्चा कहलाकर बच जाता है, लेकिन वेश्या शब्द का लाञ्छन सिर्फ स्त्री पर लगता है। बचपन से हरएक व्यक्ति तथा चिरकाल से हमारा समाज ऐसे वातावरण मे पलता चला आया है, जिसमे पुरुष के लिए सदाचार की जो कसौटी क़ायम है, उस पर जब स्त्री को तौलने लगते है, तो हम आश्चर्य करते हैं। दुनिया भर मे 'सदाचार' 'सदाचार' चिल्लाया जा रहा है। हिन्दुस्तानियों को यह नही समझना चाहिये कि इसका ठेका सिर्फ उन्ही को मिला है। यूरोप, अमेरिका, एशिया, सभी मुल्कों मे इस पर जोर दिया जाता है और धर्म और ईश्वर पर विश्वास रखने वाले तो ख़ास तौर से इसके लिये जमीन-आसमान एक करते हैं। लेकिन साथ ही सदाचार का जितना कम पालन धर्मानुयायी और ईश्वर-भक्त करते हे, जितनी अवहेलना उनके यहाँ इस नियम की होती है, उतनी और जगह नही। रूस से धर्म और ईश्वर का राज उठ गया है, लेकिन आप दुनिया मे

समाज ने ऐसी आत्मवंचना का धुआँधार प्रचार करके कौनसा लाभ समझा है। 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' के अनुसार बल्कि जितनी ही शताब्दियाँ बीतती गईं, उतना ही हमारे सदाचार का तल नीचे गिरता गया है—परिमाण में नहीं उसमें तो, देश-काल भेद से कोई अंतर नहीं पड़ा: हाँ जुगुप्सित प्रक्रिया में।

जिन देशों में स्त्रैण सम्बन्ध पर हल्के नियन्त्रण रक्खे गये हैं, वहाँ के लोग इस विषय में ज्यादा अनुकरणीय आचरण रखते हैं। नियमों और निर्बन्धों की अधिकता सिर्फ दूसरों की आँख में धूल झोंकने के लिए हमें अधिक निपुण बनाने में सफल हुई है। रोमन-कैथोलिक जैसे कितने ही धर्म ऐसे अपराधों की स्वीकृति के लिए बहुत ज़ोर देते हैं। वहाँ गृहस्थ स्त्री-पुरुष, साधु-साधुनी किसी माननीय व्यक्ति के सामने समय-समय पर अपने अपराधों को स्वीकार करते हैं। शायद यह प्रथा इसीलिए चलायी गई, कि "बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय।" लेकिन, परिणाम क्या होता है? पहले एक-दो बार अपराध-स्वीकृति में जो थोड़ा सकोच होता है, वह भी पीछे जाता रहता है। मानस-शास्त्र-वेत्ता ठीक कहते हैं कि अपूर्ण स्त्रैण इच्छाएँ और भी उग्र रूप धारण कर मनुष्य के अंतस्तल में मौक़े की ताक में पड़ी रहती हैं। धर्मों ने सबसे ज्यादा ज़ोर जिस पर दिया है, उसकी इस प्रकार से सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सार्वजनीन अवहेलना देखकर तो यही कहना पड़ता है कि इस ढोंग, इस बकवास से फायदा क्या?

वह उतना ही अधिक सुंदर लच्छेदार शब्दों मे उस पर व्याख्यान दे सकता है। नगरो और देशों के दृष्टान्त देने की आवश्यकता नहीं। जहाँ आप हैं, वहीं घरों और चहारदीवारियों के भीतर सभ्यता और दिखावे के बाहरी लिबास को हटा कर देखिये। आपको मालूम होगा कि ब्रह्मचर्य और सदाचार के नियम जितने ही कड़े बनाये गये हैं, उतनी ही आसानी से उन्हें तोडा जाता है। हमारे एक महान् राजनैतिक नेता का ब्रह्मचर्य पर बडा ज़ोर है लेकिन उनके पास मे, उनकी छाया मे, उनके बड़े-बडे अनुयायियो ने जिस प्रकार बारबार उन्हे तोडने मे ही उन नियमों का पालन किया है, उससे तो यही मालूम होता है कि जब बाँध से बूँद भर पानी का भी रुकना सभव नहीं, तो ऐसे बाँध की ज़रूरत ही क्या?

सदाचार के सम्बन्ध मे दर-असल "मनसि अन्यत्-वचसि अन्यत्" का पक्का अनुयायी हमारा समाज दीख पडता है। भीतर की सारी पोल को देखते हुए कितनी तन्मयता के साथ हम आपस मे इसकी धार्मिक चर्चा करते हैं! उस वक्त मालूम होता है, कि हमारे समाज मे कोई उसकी अवहेलना करने वाला है ही नहीं! या, हम किसी दूसरे जगत् मे बैठ कर वार्तालाप कर रहे हैं। निश्चय ही हम लोग जब वास्तविक स्थिति पर विचार करते हैं, तब मालूम होता है, कि हमारे समाज मे ब्रह्मचर्य और सदाचार एक भारी ढकोसले से बढकर कोई महत्त्व नहीं रखता। तअज्जुब होता है, कि हज़ारों बरसों से हमारे

एक बड़े भारी हिन्दूधर्म के नेता और विष्णु के साक्षात् अवतार महात्मा की बात है। उन्होंने हिन्दू-धर्म का प्रचार और रक्षा के लिए बहुत विशाल आयोजन किया। उसमे भारत के बड़े-बड़े राजा, सेठ-साहूकार शामिल थे। धार्मिक जगत् मे जितनी उनकी धाक रही उतनी कम ही की होगी। लेकिन उनकी भीतरी लीला को देखिये तो मालूम होगा कि रासलीला करने के लिये साक्षात् कन्हैया ही अवतार लेकर चले आये हैं। सुन्दरी विधवाओ पर आपका ख़ास तौर से अनुराग रहता है।

एक और महाराज रहे हैं, जिनकी शास्त्रीय विद्वत्ता, धर्म-परायणता, दान और सदाचार की धाक सारे भारत पर रही है। लेकिन भीतर से उपासना, कुमारी-पूजा आदि धार्मिक अनुष्ठानो के नाम पर वह अपनी सभी वासनाओ की पूर्त्ति के लिए स्वतन्त्र थे, और ऐसे धार्मिक पुरुष से परिवारवाले लोग बहुत बचकर रहना चाहते थे।

(२) मद्यपान

शराब की मुमानियत ससार के कई प्रधान धर्म करते हैं। इस्लाम तो अपने को इसका जानी दुश्मन कहता है। शराब पीना भारी दुराचार माना जाता है। लेकिन, धनिको मे पिछले तेरह सौ साल के भीतर कितनों ने इस नियम की पाबन्दी की है? बहुत जगह तो शराब की दूकानो के मालिक मुसलमान हैं। जिस वक्त मुसलमानी सल्तनतो ने शराब के

हमारे देश के एक बडे आदमी है। धर्म पर वह अपनी बडी भारी अनुरक्ति दिखलाते हैं। भगवान् का नाम लेते-लेते गद्गद होकर नाचने लगते हैं और ऐसे प्रदर्शन में काफी रुपया खर्च करते रहते हैं। उनकी हालत यह है कि जिस वक्त बड़े वेतनवाले पद पर थे, तब कभी रिश्वत बिना लिये नही छोडते थे, और स्त्रियों के सम्बन्ध मे तो मानो सभी नियमों को तोड देने के लिए भगवान् की ओर से उन्हे आज्ञा मिली है।

एक प्रातःस्मरणीय राजर्षि को मरे अभी बहुत दिन नही हुए हे। उनकी भगवद्भक्ति अपूर्व थी। सबेरे ईश्वर-भक्ति पर एक पद बनाये बिना वह चारपाई से उठते न थे, और पूजा-पाठ मे उनके घटो बीत जाते थे। लेकिन, दूसरी ओर हाल यह था कि अपने नगर और राज्य मे जहाँ किसी सुन्दरी का पता लगा, कि जैसे हो तैसे उसे मॅगवा कर छोडते थे।

एक तरुण विधवा रानी थीं। उनके पास बड़ी भारी जायदाद थी। एक बड़े तीर्थ में भगवत्-चरणो मे लवलीन हो अपना दिन काटती थीं। धार्मिक उत्सव, पूजा-पाठ में तो खुल कर रुपया खर्च करती ही थी, साथ ही उनके यहाँ बहुत से विद्यार्थियो को भी रखकर भोजन दिया जाता था। रानी साहिबा अपनी आँख से देखकर विद्यार्थी को भरती होने देती थी। और तरुण विद्यार्थी रात-रात भर पार्थिव-पूजा मे उनकी सहायता करते थे। अत्यन्त वृद्धा होने पर भी उनकी अपार काम-पिपासा मे कोई अन्तर नही आया।

और राजनीतिज्ञ अपना परम कर्त्तव्य समझता है। राजनीतिक कोश मे मानो झूठ बोलना पाप मे गिना ही नही जाता। हमारे धर्म और समाज का सत्य भाषण पर इतना ज़ोर व्यर्थ है, जब दूसरी ओर वहाँ व्यक्तियो को झूठ बोलने के लिए मजबूर करता है। स्कूल मे एक लडका दावात तोड देता है। यदि वह तोडना स्वीकार करता है, तो उसे दड और भर्त्सना सहने के लिए मजबूर होना पडता है, और झूठ बोल देता है, तो साफ छूट जाता है। मारपीट और दूसरे अपराधों मे भी झूठ बोलने वाले ही नफे मे रहते हैं, फिर कौन सत्य बोल कर दंड भोगने के लिए तैयार होना चाहेगा? ईमानदारी से काम करके आजकल पेट भर खाना मिलना मुश्किल है। सच बोलकर लोगो की मैत्री प्राप्त करना असभव है। इसीलिए तो आदमी झूठ बोलने पर उतारू होता है। आजकल की बडी-बडी सम्पत्तियाँ, बड़े-बड़े पद, ऊँचे-ऊँचे सम्मान झूठ बोलने की निपुणता के लिए पारितोषिक हैं। हमारे समाज की हर बात मे, खाने के दाँत और, और दिखाने के और हैं, कहने के सदाचार और हैं, करने के और। जब तक सारे समाज के सम्बन्ध मे यह बात है, एक अकिंचन व्यक्ति अपने को कैसे उससे बचा सकता है। कितनी ही जगली जातियाँ हैं, जो पूँजीवादी सभ्यता और सस्कृति मे हमसे नीची समझी जाती हैं, लेकिन उनमे झूठ बहुत कम देखा जाता है। इसका मतलब है कि यह सभ्यता और सस्कृति उन्नत होकर हमारे समाज को सत्य

खिलाफ कड़ी-कड़ी सज़ाएँ मुकर्रर की थी, उस वक्त भी धनी लोगो को शराब पीने मे बाधा नही होती थी। हिन्दुओ में भी कितने ही सम्प्रदाय मद्यपान को महापाप समझते हैं। लेकिन, कितनी जातियाँ हैं जिनके धनिक उससे बचे हुए हैं? ब्राह्मण, बनिया, राजपूत, जिस किसी के पास खर्च करने के लिए इफरात पैसा है, बेखटके पीता है, और जातवाले टुक-टुक ताकते रह जाते हैं। शराब के पीछे लाठी लेकर फिरनेवाले महात्माजी के अनुयायियों मे भी कितने बड़े-बडे महापुरुष हैं, जो भीतरी तौर से इसके बारे मे अपने गुरु से भारी मतभेद रखते हैं, चाहे मद्य-निषेध की व्यवस्था देने मे वह किसी से पीछे रहने-वाले न भी हो।

(३) असत्य

सत्य भाषण की ओर धर्म और समाज जोर दे रहा है और मै मानता हूँ, कि वह उतना मुश्किल नही है, यदि समाज में अधिक कृत्रिमता न हो; तो भी सत्य भाषण आजकल कितना कठिन काम है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस कठिनाई की जवाबदेही है, अधिकतर हमारे समाज की वर्त्तमान बनावट पर, जिसमें सत्यवक्ता के लिये स्थान नहीं है। हमारी राजनीतिक सस्थाएँ असत्य प्रचार के सबसे बडे अड्डे हैं। झूठ का प्रयोग होता है लोगो को धोखा देने मे। अपने स्वार्थ के लिए झूठ बोलकर दूसरे को धोखा देना हर एक राष्ट्र

और चोरी रोकने के लिए अपने को ज़िम्मेवार समझती है, लेकिन चौकीदार और कान्सटेब्ल ही नहीं, थानेदार, इन्सपेक्टर और ऊपर के अफ़सर तक हाथ गरम कर देने पर तरह दे देते हैं। सभी लोग जानते हैं कि सौ में नब्बे थानेदार रिश्वत लेते हैं, देहात में किनसे यह बात छिपी हुई है? पुलिस कुछ चोरों को पकड़-पकड़ कर जेल में भेजती ज़रूर है, लेकिन क्या कभी किसी ने यह हिसाब लगाया है, कि कितने असली अपराधियों को उसने रुपया लेकर छोड़ दिया? जनता की सरकार के क़ायम होने पर भी हम पुलिस के इस रवैये में कोई फरक़ नहीं देखते। जब तक इस तरह रिश्वत का बाज़ार गर्म है, तब तक चोरी कैसे रुक सकती है? ख़्याल करने की बात है कि जिन लोगों को अपने परिवार की परवरिश के लिए काफ़ी रुपया हर महीने मिल जाता है यदि वे अवध आमदनी से हाथ हटाना नहीं चाहते, तो भूख की पीड़ा से पीड़ित होकर चोरी करने वाले अपने को कैसे रोक सकेंगे?

जेलों में अपराधी चाल-चलन सुधारने के लिए भेजे जाते हैं। किसी समय दंड का अभिप्राय यन्त्रणा से अपराधी को भय-भीत करना था, लेकिन आज की सभ्यता की दुनिया सजा और जेल को सुधार करने का मौक़ा देना समझती है। इन जेलों की क्या हालत है? क़ैदी आकर वहाँ देखता है कि छोटे सिपाही से लेकर सुपरिंटेन्डेन्ट तक क़ैदियों के भाग में से कुछ न कुछ ज़रूर अपने इस्तेमाल में लाते हैं। तीन मन चावल में आधा

के सम्बन्ध मे और नीचे ले जाती है। हमारे समाज ने ढोंग, आत्मवंचना को जितना ही अधिक आश्रय दिया है, उतना ही हर एक व्यक्ति अपने विचारो को स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट करने मे असमर्थ है। समाज का हर एक व्यक्ति अपने लिए तो नहीं चाहता, लेकिन दूसरे को जैसे हो तैसे धोखा देकर अपना काम बनाना चाहता है। किसी का किसी के ऊपर पूरी तरह से विश्वास नही, इसका परिणाम हो रहा है—स्त्री पुरुष को वञ्चित करना चाहती है और पुरुष स्त्री को, पिता पुत्र को धोखा देना चाहता है और पुत्र पिता को। आख़िर इस प्रकार की वंचनापूर्ण अराजकता का ज़िम्मेवार कौन है? हमारा समाज।

(४) चोरी-रिश्वत

पुराने ज़माने मे चोरी के लिए लोगो का हाथ काट दिया जाता था, जान ले ली जाती थी। आजकल सजाएँ कुछ हल्की हैं, लेकिन तब भी समाज की दृष्टि मे चोरी भारी पाप समझा जाता है। उसके लिए सख़्त क़ानून और जबर्दस्त जेलखाने बने हैं। सरकार लाखो रुपया पुलिस पर ख़र्च करती है। बड़ी-बड़ी तनख़ाहे पाने वाले जज और मैजिस्ट्रेट इसके लिए नियुक्त किये गये हैं। लेकिन क्या उससे यथेष्ट रोकथाम है? जिन लोगो को चोरी बन्द करने का काम मिला है, यदि वे ख़ुद वही काम करते हो, तो उनके किए चोरी कैसे बंद होगी? पुलिस चोरो को पकड़ने

जिस समय वकील नहीं थे, हर आदमी अपना वकील था; उस वक्त गरीब के लिए न्याय पाना अधिक आसान था। कानून न्याय समझने में आसानी नहीं पैदा करते, बल्कि भारी भ्रम पैदा करने का काम देते हैं; उनके कारण स्पष्ट बात भी अस्पष्ट हो जाती है। कहने को तो यह भी कहा जाता है कि कानून अवलम्बित है व्यवहार-बुद्धि—कामन् सेन्स—पर, किन्तु आजकल तो उसका काम व्यवहार-बुद्धि को निकम्मा बना देने का है। सूक्ष्म प्रतिभाएँ जो समाज के हित के काम को कर सकती थीं, आज बाल की खाल उतारती कानून के अर्थ का अनर्थ करने में तत्पर हैं। झूठे मुकदमे को सच्चा और सच्चे को झूठा करने में ही अच्छे वकील की तारीफ है। आये दिन, दिन-दहाड़े हम सफेद को काला और काले को सफेद होते देखते हैं।

कानून और न्यायालय धनी के विरुद्ध ग़रीब को न्याय देने में कितने असमर्थ है, इसके लिए दूर के दृष्टान्त की ज़रूरत नहीं। भारत के हरएक गाँव में इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे। मामूली अपराध की तो बात ही क्या, ख़ून तक पचा लिये जाते हैं। ज़मींदार या धनी के इशारे पर आदमी मारा गया। धनी आदमी ने रुपयों का तोड़ा खोलकर डाक्टर के सामने रख दिया। डाक्टर समझता है, दस बरस में जो कमायेंगे वह सामने रक्खा है, घर आयी लक्ष्मी को दुतकारना बुद्धिमानी नहीं। लिख देता है—दिल कमज़ोर था, चोट साधारण थी, आदि...; और मामला दूसरे से दूसरा हो जाता है। बहुत

मन निकाल लिया जाता है। आटे मे चोकर और मट्टी भी डाल दी जाती है। अच्छी तरकारियाँ अफसरों की डालियो के लिए सुरक्षित रक्खी जाती हैं और मामूली तरकारी मे से भी अच्छा भाग दूसरे ले जाते हैं, और कैदियो के हिस्से मे सिर्फ घास और पत्ता पड़ता है। तेल, दूध, घी, गुड़—सभी खाद्य वस्तुओं मे इस तरह की लूट है। सिगरेट और तम्बाकू को वर्जित कर सरकार कैदियों को सयम का पाठ पढाना चाहती है, लेकिन उसका परिणाम सिर्फ इतना ही है कि पैसे वाले कैदियों को ये चीज़े कुछ महँगी पड़ती हैं। वस्तुतः जिस क़ैदी के पास रिश्वत देने के लिये पैसा है, उसके लिए जेल में सब तरह का प्रबन्ध हो जाता है। इस तरह के वातावरण मे ख़ाक सुधार होगा ?

(५) तुम्हारे न्याय की क्षय

हमेशा से न्याय करने का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। समाज और उसके नेता धनिकों की तरफ से गरीबों पर कितना अन्याय होता है, इसके बारे मे हम कह आये हैं। दुनिया की सरकारे कितना न्याय कर रही हैं, इसे ज़रा देखना है। आजकल की सरकारे न्यायालयों और कानून बनाने पर बहुत ध्यान देती हैं और कहा जाता है कि यह सब इसीलिए कि जिसमें सबको न्याय पाने मे सुभीता हो। लेकिन क्या गरीबो को न्याय पाने का सुभीता है ? जिस वक्त न्यायालय नही थे, सिर्फ पंचायतें थी जिस वक्त क़ानून नहीं थे, सिर्फ व्यवहार-बुद्धि निर्णायक थी;

पाई। जिस तरुण ने अपने साथ खेलने वाले लड़के को इस तरह पिस्तौल का निशाना बनाया, वह साधारण अपराधी दिमाग का व्यक्ति नही हो सकता। यदि वह गरीब घर मे पैदा हुआ होता, तो खून के कारण फॉसी पडने से यदि बच भी जाता, तो उसका स्थायी निवास प्रान्त के बडे-बड़े जेलखानो मे जन्मजात अपराधियों मे तो जरूर होता; लेकिन आज वह व्यक्ति प्रान्त के बड़े प्रभावशाली धनिक अगुओं मे है।

एक दूसरे धनी ज़मींदार की बात है। वह अपने रोब-दाब के लिए पास-पडोस के बहुत से गॉवो मे मशहूर थे। कहने को तो हिन्दुस्तान मे ॲग्रेजों का राज है, लेकिन जहाॅ तक उनकी ज़मीदारी का सम्बन्ध था, ॲग्रेजी शासन का नबर उनके बाद आता था। मामूली मार-पीट ही नही, बड़े-बडे मुक़दमो तक का फैसला वे जुर्माना लेकर कर दिया करते थे; और किसकी शामत आती कि उनके फैसले के खिलाफ थाने तक भी जाने की हिम्मत करता। उनके गॉव मे एक आदमी ने एक मैना पाला था। मैना आदमी की बात बोलता था। इसकी खबर ज़मीदार साहब को लगी। झट मैना मॉग लाने को आदमी भेजा गया। गरीब ने दुनियाॅ के अनुभव से बहुत शिक्षा नहीं ली थी। अपने प्रिय पालतू पशु-पक्षी मे आदमी का पुत्रवत् स्नेह हो जाता है। उसी स्नेह से अन्धा होकर उसने मैना को देना नही चाहा। यह खबर जब मालिक को मिली तो वह आग-बबूला हुआ। तुरन्त उन्होंने एक पहलवान् सिपाही उसे मार

बार तो लाश को ले जाकर तुरन्त जला दिया जाता है और फिर भय और प्रलोभन से गवाहियाँ अपने पक्ष मे बना ली जाती हैं। अक्सर ग़रीब आदमी अदालत तक नही जाते। अगर धनियों द्वारा किये गये तीन ख़ून किसी थानेदार को मिल जाये तो उसका भाग ही खुल जाय। वह इतना रुपया जमा कर ले, कि उसकी नौकरी चली भी जाये तो भी वह जिन्दगी भर चैन की बंशी बजाता रहेगा।

बिहार के एक बड़े ज़मीदार की बात है। उन्हे लाखो की आय है, जिसे एक जाली बिल के ज़रिये उनके बाप ने उनके लिये प्राप्त किया। उस वक्त वे बिल्कुल तरुण थे। एक स्वजातीय ग़रीब लड़का उनके पास रहा करता था। एक दिन किसी बात मे नाराज़ तरुण जमीदार ने उस लडके पर पिस्तौल दाग़ दी। लड़का वही ढेर हो गया। लाश को फुँकवा दिया गया और थाने के दरोग़ा को बुला कर एक भारी रक़म उनके सामने पेश की गई। उस रुपये की राशि को देखकर थानेदार की आँखे चमक उठी। पीछे वही थानेदार असहयोग मे नौकरी से इस्तीफा दे राष्ट्रीय युद्ध मे शामिल हो गये थे। बहुत वर्षों तक हम दोनो साथ काम करते थे। वह बतलाते थे कि कैसे रात ही रात उन्होने मृत लड़के के बाप के गाँव मे जाकर वहाँ उसके सम्बन्धियो को पट्टी पढ़ाई। किस प्रकार ऊपर और नीचे के अफसरों ने रुपये बाँट कर क़ानून और न्याय को अँगूठा दिखाया गया। ख़ून हुआ है, इसकी खबर तक अदालत मे नही पहुँचने

किया गया है। पुलिस ने "प्रत्यक्षदर्शी" गवाहों के बयान लिये। घर के सभी सयाने पुरुष जेल में बन्द कर दिये गये। मुक़दमा लड़ने में घर की सम्पत्ति स्वाहा हो गई। आदमियों को लम्बी-लम्बी क़ैद की सजाएँ हुईं। घर में सिर्फ़ स्त्रियाँ रह गई थीं और उनमें से भी अधिकांश भूख और बीमारी के कारण कुछ ही वर्षों में चल बसीं। मकान मरम्मत के बिना गिर पड़ा और उसके ऊपर बोए रेंड को कुछ साल बाद मैंने ख़ुद अपनी आँखों देखा।

यह है आज के क़ानून की करामात और आज के न्याय का नमूना।

न्याय सस्ता और सुलभ नहीं है, बल्कि जबर्दस्त शत्रु के मुक़ाबिले में वह दुनिया की सबसे महँगी चीज़ है। वह इतनी ख़र्चीली चीज है कि धनी आदमी हारते-हारते भी ग़रीब को उजाड़ देता है। बिना स्टाम्प का पैसा दिये तो ग़रीब अदालत में दर्ख़ास्त भी नहीं दे सकता। और, फिर स्टाम्प ही तो काफी नहीं है? वहाँ चाहिए वकील और मुख़्तार को फीस, पेशकार और सरिश्तेदार को नज़राना, अर्दली और चपरासी को भेंट। जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी बड़े-बड़े वकीलों को बड़ी-बड़ी फीस देकर रख लेता है। यदि तुमने किसी टुटपुँजिया वकील को खड़ा किया तो बने मुक़दमे के भी बिगड़ जाने की सम्भावना हो जाती है। घर, जमीन बेचो, ज़ेवर बँधक रक्खो, जैसे भी हो रुपया ख़र्च कर मुक़दमे की पैरवी करो। अगर मुक़दमा दीवानी

कर मैना छीन लाने के लिये भेजा। सचमुच गरीब को जान से ख़तम कर मैना पकड़ मँगाया गया। मुक़दमा अदालत तक गया तो ज़रूर, लेकिन ज़मीदार साहब को एक दिन की हवालात तक की हवा खाने की नौबत न आई।

मगह प्रान्त—पटना—गया ज़िलो—के जमीदार अपने अत्याचार के लिये सारे बिहार मे प्रसिद्ध हैं। वहाँ के एक जमीदार का संकल्प था कि जहाँ तक हो सके, उनकी जमींदारी मे किसी किसान के नाम काश्तकारी न लगने पाये। वह अपने हर गाँव मे झूठे मुक़दमे चला, मारपीट और दूसरे ज़रियो से लोगो को तंग कर के उन्हे काश्तकारी से इस्तीफा देने को मज़बूर करते थे। उनके एक गाँव—जिसका नाम अब दूर तक प्रसिद्ध हो गया है—के प्रायः सभी किसान काश्तकारी से हाथ धोकर ज़मीदार के शिकमी रैयत बन चुके थे। उस गाँव मे एक किसान-घर था, जिसके पास खाने-पीने के लिये काफी खेत और धन था और परिवार मे कई काम करने वाले जवान व्यक्ति भी थे। ज़मीदार को इस परिवार को परास्त करने मे कई बार मुँह की खानी पड़ी। इस पर उसने प्रतिज्ञा की कि उस परिवार को तबाह करके उसके घर पर रेंड न बोआएँ तो नाम नही। अब की बार किसी दूसरे गाँव से एक मरणासन्न आदमी लाकर उस गाँव में मरवाया गया और उक्त परिवार के व्यक्तियों पर ख़ून का मुक़दमा चलाया गया। डाक्टर ने ोर्ट दी कि जान-बूझ कर सही-सलामत आदमी का ख़ून

चमचमाहट उन्हें क्यों न अपनी ओर आकर्षित करेगी। अगर किसी को रिश्वत लेने में संकोच होता है तो या तो इसलिए कि वह कम है अथवा भेद छिपा रखने में कठिनाई होगी। अनौचित्य के ख्याल से रिश्वत से बाज़ आने वाले लोग बहुत मुश्किल से मिलते हैं। ज़िलों के छोटे-मोटे अधिकारियों की तो बात ही छोड़ दीजिये, हाईकोर्ट के जज तक रिश्वत लेते पाये गये हैं। और इसे मुक़दमा लड़ने वाली जनता खूब जानती है। छोटे और बड़े लाटों तक को घुड़दौड़ के घोड़े, क़ीमती हार तथा दूसरी बड़ी-बड़ी भेंटों को देकर अपना काम बनाया गया है। एक रियासत के ख़िलाफ़ कई ज़बर्दस्त प्रमाण जमा हो गये थे। रिकार्ड के अधिकारी को इकट्ठा कुछ लाख रुपये दे दिये गये और दूसरे दिन देखा गया कि वे सारे प्रमाण गायब हैं।

राज तो आजकल है थैली का। शासन पर अनुशासन उसका है जिसके पास धन है। क़ानून बनाने वाले हैं वे ही जिनके पास तोड़े हैं। इंगलैंड के थैले वाले हिन्दुस्तान के मालिक हैं। वे कभी ऐसा क़ानून बनने देना पसंद नहीं करते, जिससे कि उनकी थैली पर हाथ पड़ने पाये। देश और विदेश में यातायात के साधन जहाज़ और रेलें इसी दृष्टि से सञ्चालित की जाती हैं। भारत की रेलों का एक अलग महकमा बना दिया गया है यह ख्याल करके कि कहीं भारतीय राजनीतिज्ञों का दबाव उन पर न पड़ने लगे। क़ानूनों की भरमार है। हर साल हमारे देश में सैकड़ों क़ानून बनते और सुधरते रहते हैं। लेकिन वह

मे है। और एक ही है तो फौजदारी मुक़दमो की भी तो संख्या निर्धारित नही की जा सकती। मार-पीट, चराई आदि के कई मुकदमे साथ ही साथ फौजदारी अदालत मे भी चल रहे हैं। मुन्सिफ के यहाँ से यदि फैसला पक्ष मे हुआ तो सब-जज के यहाँ अपील हुई। वहाँ से भी यदि क़िस्मत ने मदद की तो हाईकोर्ट और उसके बाद प्रीवी कौन्सिल। फौजदारी मुक़दमे अलग चल ही रहे हैं। यदि हर इजलास मे ख़र्च करने के लिए तुम्हारे पास रुपया नही है तो तुम्हारी जीत भी हार मे बदल जाती है!

यह तो हुआ तब, जब कि हाकिम लोग ईमानदार हों। लेकिन, आजकल के हाक़िमो मे कितने हैं जो जल्द से जल्द धनी बनना पसद नही करते! जिसे ढाई सौ माहवार तनख़ाह मिलती है, वह भी चाहता है, पास मे मोटर रखना, वह भी चाहता है कि वह और उसकी स्त्री शाहाना ठाट मे रहे; उसके लड़के-लड़कियाँ शाहज़ादो-शाहज़ादियो के कान काटे; उसके महल मे राजमहल का समाँ दिखाई पड़े। उत्सव और त्यौहारो में वह शाहख़र्ची का ज़बर्दस्त सबूत दे सके। बच्चों के पढाने-लिखाने मे ख़र्चीले से खर्चीले स्कूलो और कालेजों की तलाश करे। व्याह-शादी मे बड़े-बड़े तिलक-दहेज दे और दोनों हाथों अशर्फियाँ लुटाये। उसकी पार्टी मे बड़े से बड़े हाक़िम और रईस शामिल हों; जिनके लिए देशी और विलायती सब तरह के सुदर से सुंदर भोजन परोसे जायँ। आजकल के हमारे हाक़िमों की जब ये हार्दिक लालसाएँ हैं, तो रुपये की

के लडके ही हैं। पिता लाखों का मालिक है, एक रियासत का बड़ा मत्री है, और लडका सरकार के एक विभाग का सेक्रेटरी। अखिल भारतीय सरकारी अफसरो मे ही नहीं, प्रान्तीय बडी-बडी नौकरियो मे भी उन्ही को जगह मिली है, जिनमे अधिकाश के पास जीविका के अन्य स्वतन्त्र साधन है। जब सरकार के चलाने वाले ये बडे-बडे कर्मचारी धनिक-श्रेणी से आये है तो धनी गरीब के मामले मे वे अपनी श्रेणी के स्वार्थ के विरुद्ध काम करेगे, यह कब सभव हो सकता है? अग्रेज—अधिकारियों, के बारे मे पिछले डेढ़ सौ बरसों का तजरबा हमे बनाता है कि जहाँ काले-गोरे का सवाल होता है वहाँ वे न्याय को ताक पर रख देते हैं। कितने ही निरपराध भारतीय अग्रेजो की ठोकरो और गोलियो के शिकार हुए हैं, लेकिन कितने मुकदमों मे खूनी को फाँसी की सजा हुई है? साहेब की ठोकर से मरे आदमी की तिल्ली, डाक्टरी जॉच से, बढी पाई गई। यही न्याय का अभिनय हम धनी और गरीब के मामले मे न्यायधीश के पद पर आरूढ धनिको की सतानो द्वारा किया जाता देखते हैं। ज़मीदारों और किसानो मजदूरो और मिल-मालिकों के झगडो मे जो कड़वा तजरबा हमे मिल रहा है उससे मालूम हो रहा है कि उनकी सहानुभूति हमेशा धनिको की ओर रहती है। मार-पीट और बलवे की तैयारी सबसे जबर्दस्त जमींदारों की ओर से होती है। अपनी जीविका के छिन जाने के भय से किसान शान्तिमय तरीक़े से

इसलिए नहीं कि मनुष्य ईमानदारी से कमाई अपनी सम्पत्ति का अपने आप उपभोग कर सके। इनका मतलब सिर्फ इतना ही है कि कैसे धनिकों के हित के लिए चलते इस शासन की सहायता के लिए कुछ और क़ाबिल दिमाग आदमी ख़रीदे जा सकते है? कैसे कुछ और चिल्लाने वाली जमातो का मुँह बन्द किया जा सकता है? काबिल दिमागो को सरकारी बड़े-बड़े पदो पर सिर्फ इसलिए नहीं नियुक्त किया जाता कि वह अपनी योग्यता से जनता को फायदा पहुँचाये, बल्कि इसलिए कि वह चिरकाल से स्थापित स्वार्थों को अक्षुरण बनाये रखने मे सहायता करे। सभी जानते हैं कि सरकारी नौकरियों मे लोग बडी-बड़ी तनख़ाहो और स्थायी जीविका के लिए दौड़ते हैं। यदि सरकारी धन को इन्साफ के साथ वितरण करना ही है तो उसके बड़े हक़दार हैं गरीबो की सन्ताने। लेकिन हम क्या देखते हैं। गरीबो की सन्तानों के लिए तो पहले पढना ही मुश्किल है। पढ़ लिखकर योग्यता प्राप्त करने पर भी बडी नौकरियो के लिए अपेक्षित सिफारिशे वे जमा नही कर सकती। परिणाम यह हो रहा है कि हर तरह की बडी-बड़ी नौकरियो मे लखपतियो-करोड़पतियो, बड़े-बड़े जमोदारों, और राजा-नवाबों के लड़के भरे पड़े हैं। आई० सी० एस० (I. C. S.) आई० पी० एस० (I. P. S.) आई० एम० एस० (I. M. S.) आदि अधिकारियो की सूची को उठाकर देखिए तो मालूम होगा कि देश के धनी, जमीदारो, महाजनों और प्रभावशाली राजनीतिज्ञों

फैसले को बहाल रक्खा। सब तरफ से न्याय का रास्ता बन्द देख कर किसानो ने शान्तिमय सत्याग्रह की शरण ली। दिन मुक़र्रर हुआ। पुलिस और हाकिमों को मालूम था कि ज़मींदार की तरफ से मारपीट की ज़बर्दस्त तैयारी हो रही है। वे यह भी जानते थे कि किसान हर हालत मे शान्त रहना चाहते हैं। उनको यह भी मालूम हो चुका था कि ज़मीदार के हाथी इस युद्ध मे खास तौर से भाग लेने के लिए तैयार किये जा रहे हैं। निश्चित दिन पर हाथियों के खास कई सौ आदमी लाठी-गॅड़ासे लिये एकत्र हुए। किसानो की ओर से सिर्फ थोड़े से निहत्थे सत्याग्रही। जनता को खास तौर से बहुत सख्या मे न आने के लिये कहा गया था। किसान सिर्फ ग्यारह खेतो की तरफ बढते है। हाथियो और लठधारी जवानो को लेकर ज़मींदार सत्याग्रहियो पर हमला करने के लिए खेत पर पहुॅचता है। पुलिस की अधिक सख्या का वहाॅ पता नहीं। गिरफ्तारी के बाद जब सत्याग्रही पुलिस की हिरासत में थे तब जमीदार के आदमी ने एक सत्याग्रही पर लाठी-प्रहार किया। सिर से ख़ून की धार बहने लगती है। प्रहार करने वाला आदमी उस वक्त गिरफ्तार कर लिया जाता है, लेकिन थोडी देर बाद सरकारी अधिकारी उसे छोड देते हैं। अन्धा भी देखकर कह सकता था कि मार-पीट की सारी तैयारी ज़मींदार की ओर से हुई थी। लेकिन उसके एक भी आदमी को न तो पकडा जाता है और न उसे वैसा करने से रोका जाता है। उसके लठैत सरकार की ओर से

उसका विरोध करते हैं। लेकिन सभी जगह देखा जाता है कि पुलिस और मैजिस्ट्रेट किसान को ही अपराधी ठहराते हैं, और उन्ही के उपर दफा १०७, या दफा १४४ की कार्रवाई की जाती है। आँखो से साफ देखा जाता है कि जमींदार ने बलवा करने मे कोई क़सर उठा नही रक्खी, तो भी उसके एक आदमी को भी कुछ कहने की ज़रूरत नही पडती।

एक जगह का हमें ताजा तज़रबा है। जमींदार ने पीढियों से जोतते आते किसानों से उनके खेत को छीनना चाहा। किसान सोचने लगे कि यदि खेत निकल जायेंगे तो बाल-बच्चे जियेंगे कैसे? उन्होंने मार खाकर के भी खेत छोडना नहीं चाहा। ज़मींदार ने थाने मे रिपोर्ट लिखवाई। किसान की रिपोर्ट को थानेदार लिखना नही चाहते थे। थानेदार ने जमींदार के पक्ष मे होकर कुछ किसानों पर शान्तिभग का आरोप करके मैजिस्ट्रेट को लिख दिया। फौजदारी अदालत को अपना फैसला कब्जे को देखकर देना चाहिए। मैजिस्ट्रेट को जमींदार की बातों से सच्चाई का पता लग गया। किसान चिल्लाते ही रह गये कि चल कर देख लिया जाय, खेत पर कब्ज़ा हमारा है। दो सौ-चार सौ बीघे जोतने वाला आदमी चौथाई और पंचइयाँ एकड मे अलग-अलग फसल नहीं बोएगा। लेकिन मैजिस्ट्रेट को वहाँ जाने की ज़रूरत नहीं मालूम पडी। उसने झट उनपर दफा १४४ लगा दिया। ऊपर के अफसर ने भी बारबार प्रार्थना करने पर भी, खेत को देखना पसन्द न किया और मैजिस्ट्रेट के

(६) तुम्हारे इतिहासाभिमान और संस्कृति की क्षय

'इतिहास' 'इतिहास'—'संस्कृति' 'सस्कृति' बहुत चिल्लाया जाता है। मालूम होता है इतिहास और सस्कृति सिर्फ मधुर और सुखमय चीज़े थीं। पच्चीसो बरस का अपने समाज का तज़रबा हमे भी तो है। यही तो भविष्य की सतानो का इतिहास बनेगा? आज जो अन्धेर हम देख रहे हैं, क्या हजार साल पहले वह आज से कम था? हमारा इतिहास तो राजाओ और पुरोहितों का इतिहास है, जो कि आज की तरह उस ज़माने मे भी मौज उडाया करते थे। उन अगणित मनुष्यो का इस इतिहास मे कहाँ जिक्र है, जिन्होने कि अपने ख़ून के गारे से ताजमहल और पिरामिड बनाये जिन्होने कि अपनी हड्डियो की मज्जा से नूरजहाँ को अतर से स्नान कराया· जिन्होंने कि लाखों गर्दने कटा कर पृथ्वीराज के रनिवास मे सयोगिता को पहुँचाया। उन अगणित योद्धाओ की वीरता का क्या हमे कभी पता लग सकता है, जिन्होंने कि सन सत्तावन की स्वतन्त्रता-युद्ध मे अपनी आहुतियाँ दी? दूसरे मुल्क के लुटेरों के लिए बड़े-बड़े स्मारक बने, पुस्तको मे उनकी प्रशसा का पुल बाँधा गया। गत महायुद्ध मे ही करोड़ों ने क़ुर्बानियाँ कीं, लेकिन इतिहास उनमें से कितनो के प्रति कृतज्ञ है?

इतिहास हमारे समाज की पुरानी बेड़ियों को मज़बूत करता है। इतिहास हमारी मानसिक स्वतन्त्रता का सबसे बडा शत्रु है। इतिहास हमारी पुरानी दुश्मनी और अनबनों को ताज़ा

क़ानून को अपने हाथ मे ले लेने के लिए आजाद छोड़ दिये गये थे।

एक दूसरे ज़मीदार का किस्सा है, जो बतलाता है कि धनिको के सामने न्याय और कानून की कितनी दुर्गति होती है। वे नहीं चाहते थे कि किसानो को अपने खेत मे काश्तकारी का हक़ मिले। बहुत दिनों से किसान खेत जोतते आ रहे थे। सर्वे मे लाख कोशिश करने पर भी काश्तकारी लग ही गई। ज़मींदार ने मामले-मुकदमे और जोर-जुल्म की तैयारी की। किसान जानते थे कि इतने ज़बर्दस्त ज़मीदार से लड़ने मे वे उजड़ जायेंगे, इसलिये अधिकाश ने जा-जाकर अपने इस्तीफे की रजिस्टरी कर दी। मैने पुलिन्दे के पुलिन्दे उन रजिस्टरी-शुदा इस्तीफो को देखा है और देखते वक्त मै सोच रहा था कि इन ग़रीबो के लिए न्याय क्या माने रखता है। यदि जरा भी न्याय पाने का उन्हे भरोसा होता तो अपनी और अपनी सतानो की जीविका के साधन इन खेतो से वे इस्तीफा क्यों देते?

जुए को क़ानून के ख़िलाफ़ समझा जाता है। लेकिन घुड-दौड़ की बाज़ी क्या है? चूँकि उसमे बादशाह तक के घोडे शामिल होते हैं, इसलिए घुड़दौड़ का जुआ हलाल है। और बड़ी-बड़ी लाटरियाँ क्या जुआ नहीं ह? छोटे-मोटे जुए तो पुलिस की संरक्षकता में भी अक्सर होते हैं। बड़े-बड़े जुओ के संरक्षण का भार तो राज्य के सूत्रधारों के कन्धे पर है। यही न्याय है? आश्चर्य!

थी, इसका हमें काफी ज्ञान है। उस वक्त स्वेच्छा-पूर्वक अपने को और अपनी सन्तान को बेचा ही नहीं जाता था, बल्कि समुद्र और बड़ी नदियों के किनारे के गाँवो में तो आदमियों को पकड़ ले जाने के लिए बाक़ायदा हमले हुआ करते थे। डाकू गाँव पर छापा मारते थे और धन के साथ-साथ वहाँ के काम करने लायक़ आदमियों को पकड़ ले जाते थे। हर साल हजारों इस तरह के गुलाम पोर्त्तुगीज डाकू पकड़ कर बर्मा के अराकान प्रदेश मे बेचा करते थे। रामराज्य में यदि इस तरह की लूट और डाकेजनी न रही होगी तो दास-प्रथा तो ज़रूर ही थी। अभी दस ही बारह साल हुए हैं जब कि हिन्दुओ के अभिमान की चीज नेपाल राज ने अपने यहाँ दास-प्रथा का अंत किया। मिथिला मे अब भी कितने घरों मे वे काग़ज़ हैं जिनमे बहिया (दास) के क्रय-विक्रय दर्ज हैं। दरभगा ज़िले के तरौनी गाँव (थाना बहेडा) मे दिगम्बर झा के परदादा ने कुल्ली मॅड़र के दादा को किसी दूसरे मालिक से ख़रीदा था और दिगम्बर झा के दादा ने पच्चास रुपये के फायदे के साथ उसे बेच दिया। अभी तीन ही पीढी पहले अंग्रेजी राज तक मे यह प्रथा मौजूद थी और सच्चे धार्मिक हिन्दू हों चाहे मुसलमान दोनो जब अपनी मनुस्मृतियों और हदीसों मे दासों के ऊपर मालिकों के हक़ के बारे मे पढ़ते हैं तो उनके मुँह मे पानी भर आये बिना नहीं रहता।

आइये, रामराज्य की दास-प्रथा की एक झाँकी लीजिए।

करता रहता है। सहस्राब्दियों से मनुष्यता का घोर शत्रु सिद्ध हुआ धर्म बहुत कुछ इतिहास के आधार पर टिका है। विश्वामित्र हो चाहे वशिष्ठ, मनु हों चाहे याज्ञवल्क्य, व्यास हो चाहे पतंजलि, नानक हों चाहे कबीर, मूसा हो चाहे ईसा—सभी पचासों बरस इस धरती पर जीते रहे। न जाने कितनों के दिल को उन्होंने दुखाया होगा, न जाने कितनों के हक को छीना होगा, न जाने कितने दास-दासी ख़रीद कर ज़िन्दगी भर उनसे पशु की तरह काम लेते रहे होंगे। अपने मालिकों और अन्नदाताओं की चापलूसी में न जाने क्या-क्या कुकर्म उन्होंने किये होंगे। सफल लुटेरों और ख़ूनियों को आसमान पर चढ़ाने की जो प्रवृत्ति देखी जाती है, उससे मालूम होता है कि इतिहास की वीरपूजा में भी इसका बहुत बड़ा अंश रहा होगा।

हिन्दुओं के इतिहास में राम का स्थान बहुत ऊँचा है। आजकल के हमारे बड़े नेता गाँधीजी मौक़-ब-मौक़ रामराज्य की दुहाई दिया करते हैं। वह रामराज्य कैसा होगा, जिसमें कि बेचारे शूद्र शम्बुक का सिर्फ़ यही अपराध था कि वह धर्म कमाने के लिए तपस्या कर रहा था और इसके लिये राम जैसे अवतार और धर्मात्मा राजा ने उसकी गर्दन काट ली? वह रामराज्य कैसा रहा होगा, जिसमें किसी आदमी के कह देने मात्र से राम ने गर्भिणी सीता को जंगल में छोड़ दिया? रामराज्य में दास-दासियों की कमी न थी। अट्ठारहवीं-उन्नीसवीं सदी तक दुनिया में दास-प्रथा कितनी क्रूरता के साथ प्रचलित

अब की बाज़ार बहुत महँगा रहा, पिछले साल अट्ठारह बरस की हट्टी-कट्टी सुन्दरी दासी दस रुपये मे मिल जाती थी, अब की बार तो तीस मे भी हाथ धरने नही देते। एक आदमी को दासी खरीदनी है, लेकिन पैसे उसके पास कम हैं। वह एक चालीस बरस के सौदे के पास पहुँचता है। दासी के तिहाई बाल यद्यपि सफेद हो गये थे, लेकिन उन्हे रग कर काला किया गया था। मालिक की खुशकिस्मती समझिये कि दासी के दाँत सभी मजबूत थे। खरीदार ने पास जाकर उसके दाँत देखे—बिल्कुल दुरुस्त। आँखे देखी—कोई फरक नही। कान देखे—सुन सकती है। हाथों को उठा और ठोक कर देखा—कमजोर नहीं हैं। चला कर देखा—पैर भी दुरुस्त हैं। पूछा—"वाशिष्ठ जी! आपकी दासी बूढी तो हो गई है, लेकिन खैर, हमारे यहाँ काम हल्का है, बतलाइये तो मूल्य क्या है?"

वाशिष्ठ—"गौतमजी, आप गलत कह रहे हैं। अभी तो यह बीस बरस की छोकरी है। आपने देखा नहीं कि इसके हाथ-पैर कितने मजबूत हैं, कितनी सुन्दरी है, दस साल मे दस तो इसके लडके पैदा हो जायेगे। दूना दाम तो एक ही लडके से निकल आयेगा। हम आपसे मोल-भाव करना नही चाहते। पचास रुपया हमे मिल रहा था। खैर, आप परिचित हैं, आपको दस रुपया कम करके दे देगे।"

गौतम—"आप तो बहुत कडा दाम माँग रहे हैं। बालों को काला कर देने और दो महीने के खिलाने-पिलाने से यह

एक साधारण बाजार है, जिसमे सिर्फ दास-दासियों की बिक्री होती है। लाखो वृक्षो का बाग है। खाने-पीने की चीज़ो की दूकाने छनी हुई है। भेड-बकरियो और शिकार किये जानवरों के अतिरिक्त उच्च वर्ण के आर्यों के भोजन तथा मधुपर्क के लिए गोमास खास तौर से तैयार करके बेचा जा रहा है। जगह-जगह सफेद दाढी वाले ऋषि, दूसरे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने पडाव डाले पडे हुए हैं। कोई नया दास या दासी ख़रीदने आया है। किसी के दिन कुछ बिगड़ गये हैं, इसलिए वह अपने दासो या दासियो को बेच कर कुछ नगद जमा करना चाहता है। कुछ सिर्फ इस ख्याल से अपने दास-दासियों को मेले मे लाये हैं, कि उन्हे बेच कर 'नया' कर लिया जाये। कुछ बड़े व्यापारी ऐसे भी हैं जो झटपट बेचकर चले जाने की इच्छा रखने वालो की आसानी के लिए सस्ते मे दास-दासी ख़रीद लेते है और अधिक मुनाफे के साथ बेचते हैं। स्वामियों ने महीनो पहले मेले मे चलने का निश्चय कर लिया था। उन्होंने अपने दास-दासियो को खूब अच्छा खाना देना शुरू किया था, जिससे कि मांस और चर्बी से उनकी हड्डियाँ ढँक जाये और बाजार मे अधिक दाम आ सके। उनके सफेद बालो को काला रगा गया है और मेले मे कपडे-लत्ते से अच्छी तरह सँवार कर उनकी हाट लगायी गई है। कहीं-कहीं आदमी अपने एकाध दास या दासी को लेकर बैठे हैं और कहीं-कहीं सौ-सौ दो-दो सौ की पाँत लगी हुई है। खरीदारो की भीड है। खरीदने वाले कहते हैं—

का भय नही है। मालिक उनके प्रति वही ख़्याल रखते हैं जो कि अपने पशुओं के लिए।

यह है रामराज्य मे मनुष्यो के एक भाग का जीवन! और, यह है रामराज्य मे मनुष्य का मोल! इसी पर हमको नाज़ है! ऋषियो की दया और सहृदयता का गुण गाते तो हम थकते नहीं, जिन ऋषियो के आश्रमों के आस-पास मनुष्य इस प्रकार ग़ुलाम बनाकर रक्खे जाते थे। जिन ऋषियो को स्वर्ग, वेदान्त और ब्रह्म पर बड़े-बड़े व्याख्यान और सत्सग करने की फ़ुर्सत थी, जो दान और यज्ञ पर बड़े-बड़े पोथे लिख सकते थे, क्योंकि इससे उनको और उनकी सतानों को फायदा था, परन्तु मनुष्यो के ऊपर पशुओ की तरह होते इन अत्याचारो को आमूल नष्ट करने के लिए उन्होंने किसी तरह के प्रयत्न की आवश्यकता न समझी। उन ऋषियों से आज के ज़माने के साधारण आदमी भी मानवता के गुण से अधिक भूषित हैं।

सस्कृति का अग कला है। कला मे हमने कहाँ तक सारे समाज का ख़्याल रक्खा और पुराने जमाने मे भी साधारण जनता कहाँ तक उससे फायदा उठा सकती थी? सहस्राब्दियों से सगीत राजाओ और धनिकों की कामुकता को उत्तेजित करने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। संगीत की रुचि मनुष्य मे स्वाभाविक होती है। सभ्यता के निम्न तल पर रहने वाली जातियों से लेकर सभ्यता के उत्कर्ष की चोटी तक पहुँची हुई जातियों तक सभी मे नृत्य का प्रेम देखा जाता है।

न समझिये कि मै नही जानता ''यह पचास साल की बूढी है। मुझे हल्का सौदा लेना है, यदि आप दाम-काम ठीक करे तो इसे ले लूँ ?

वाशिष्ठ—आप मेले के दूसरे आदमियों की तरह मुझे भी समझ रहे हैं ? इसी की बहन को मैंने सौ रुपये मे अयोध्या के महाराज रामचन्द्र के लिए वेचा है। आजकल महाराज यज्ञ कर रहे हैं, दक्षिणा मे वे हर एक ऋषि को एक-एक तरुण सुन्दरी दासी देना चाहते है। देखा नहीं, इस साल दासियों का भाव बहुत चढ गया है ? अच्छा, जाइये, तीस ही रुपये दे दीजिये, हमे भी घर लौटने की जल्दी है। यह दासी ऐसी-वैसी नही है, यह ख़ूब नाचना-गाना जानती है। काली ! जरा एक गीत तो सुना दे।

काली ने एक गीत सुनाया और नाच के भी एक-दो तर्ज़ दिखलाये। अन्त मे पन्द्रह रुपये पर सौदा पटा।

लोग अपने-अपने दासों को घर ले जा रहे हैं। कितनी दासियो के बच्चे बिक कर सैकडों कोस दूर पहुँच गये हैं। कितनी के प्रेमी हमेशा के लिए छूट गये हैं। बच्चों और प्रेमियों के इस बिछोह के कारण किसी काम मे उनका मन नही लग रहा है और नये मालिक उनसे काम लेने को उकता रहे हैं। दो-चार दिन जो नर्मी देखी गई, उसे ख़तम करके अब जरा-जरा सी शिकायत पर दास-दासियों पर कोड़े पड़ रहे हैं। दासों को जान तक मार डालने में मालिकों को कोई ज़बर्दस्त सज़ा पाने

लिए हैं ही। कोई भी विदेशी जो एक बार हिन्दुस्तानी गाँव से गुजर जायगा और पास के खेतो में अलग-अलग फैले हुए हवा और धूप में सूखते पाखानों को देखेगा वह कैसे समझेगा कि हिन्दुस्तान मे आदमी रहते हैं। एक बार मेरे एक जापानी मित्र को, जिनके स्नेहपूर्ण आतिथ्य को पाने का मुझे कई दिनो तक मौक़ा मिला था, भारत आने के लिए लिखा। उन्होने भी यह इच्छा प्रकट की थी कि मैं भारत के ग्रामीण जीवन को नजदीक से देखना चाहता हूँ। मुझे पत्र पाकर यह चिन्ता हुई कि किन गाँवों मे मैं अपने मित्र को ले जाऊँ। सबसे बड़ी दिक्कत मुझे पाख़ाने और नहाने की मालूम पडती थी। हिन्दुस्तान के गाँवों मे खुले खेतों के अतिरिक्त पाखाने का कोई इन्तिजाम नही। गाँव ही क्या, शहर मे भी पचास हजार लगाकर महल बनाने वाले पाखाने के लिए पचास रुपये का "सेप्टिक टैंक" लगाना दड समझते हैं। गुसलखाना तो अगरेजों और क्रिस्तानों की चीज है। मेरे तरद्दुद को देखकर एक मित्र ने अपने यहाँ ख़ास तौर से पाखाने और गुसलखाने तैयार करने का इरादा जाहिर किया। खैर, मेरे जापानी मित्र ने अपनी यात्रा स्थगित कर दी। लेकिन, उनके पत्र को पाकर जिस फ़िक्र मे मैं महीनों रहा, उससे मुझे यह तो मालूम हो गया कि हम लोग कितने पानी में हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि हमारे पूर्वजों ने स्वच्छता के लिए अत्यन्त आवश्यक इन चीज़ों की ओर क्यों नही ध्यान दिया? बल्कि जो ध्यान दिया भी है तो उल्टा, जिससे स्वच्छता

लेकिन यह हमारा ही देश है जो कि सभ्य कहलाने मे दुनिया के सभी देशों से अपने को पहले रखना चाहता है; लेकिन इन दोनों ललित कलाओ को ऐसी निम्न श्रेणी मे डाल रक्खा है कि जिनकी दुनिया मे मिसाल नहीं। इगलैड, अमेरिका और जापान के सुशिक्षित परिवार सगीत और नृत्य-कला को अपने सभ्य जीवन का एक अग समझते हैं, लेकिन ये चीज़े हमारे यहाँ वेश्याओ के लिए रख छोड़ी गई हैं। इस श्रेणी के कारण संगीत और नृत्य-कलाएँ संभ्रात कुल की स्त्रियों से बहिष्कृत समझी जाती हैं।

हम सस्कृत हैं, हम सभ्य हैं—इस तरह अपने मुँह मिया-मिट्ठू बनने से दुनिया हमे सभ्य नही मानेगी। हमारे जीवन का हरएक अग जिस तरह कलुषित और दिखावट से भरा हुआ है, उस तरह की जाति दुनिया मे शायद ही कोई हो। अभी तक तो हमने आदमी की तरह रहना भी नहीं सीखा। पास-पड़ोस की सफाई की अवहेलना मे तो हम जानवरो से भी गये-बीते है। हिन्दुस्तान के गाँवो जैसे गन्दे गाँव दुनिया के किसी भी देश मे खोजने से नही मिलेगे। यह हमारे ही गाँव की ख़ूबी है कि एक अन्धा आदमी भी एक मील पहले से ही हमारे गाँव को पहचान लेता है, जबकि उसकी नाक पाखाने की बदबू से फटने लगती है। सफाई के लिए अपने को लासानी समझने वाले हमारे देश के हिन्दू-मुसलमान पाखाने के लिए किसी प्रबन्ध की कोई ज़रूरत नही समझते। गाँव के पडोस के खेत तो इसके

पश्चिमी, यूरोपीय या क्रिस्तानी कहकर हम दुत्कारते हैं। लेकिन क्या मालूम नही कि न ये पश्चिमी हैं, न यूरोपीय हैं और न क्रिस्तानी। दो सौ बरस पहले अंग्रेज़ों के पूर्वज भी सिर पर झोटा रखते थे। उनकी पोशाक भी ऊल-जलूल थी। आधुनिक पोशाक पिछले दो सौ वर्षों के चिन्तन और परिवर्तन का परिणाम है। अभी महायुद्ध के आरम्भ तक यूरोप की स्त्रियाँ बडे-बड़े बाल रखती थीं। उनकी पोशाक मे आज से कई गुना ज्यादा कपडा लगता था। कमर अस्वाभाविक तौर पर कस कर पतली बनायी जाती थी। आज यूरोप की स्त्रियों ने बाल कटा लिए हैं, उनकी पोशाक हल्की हो गई है। कमर पतली करने की वह पुरानी सनक अब उनमे नहीं रही।

स्त्री-पुरुष का ब्याह किस लिए होता है? संतान ही उसमे मुख्य बात नहीं है। अव्वल तो हमारे यहाँ विवाह का भार जबर्दस्ती माँ-बाप अपने ऊपर लेना चाहते हैं। संतान इसमें दस्तन्दाजी न करे, इसलिए बचपन मे ही विवाह कर देना चाहते हैं। यह भी हमारी संस्कृति का एक बहुत 'उज्ज्वल' अंग है, कि जिन्हें सारी ज़िन्दगी एक-दूसरे के साथ बितानी है उन्हें एक दूसरे की प्रकृति और दिलचस्पी से परिचय प्राप्त करने का मौक़ा बिना दिये हमेशा के लिए गले मे बाँध दिया जाये। इस तरह की स्वेच्छाचारिता ने लाखों पारिवारिक जीवनों को नरक के रूप मे परिणत कर दिया है; तो भी कोई इससे शिक्षा लेने को तैयार नहीं है। माता-पिता विवाह कर देते हैं,

मे और बाधा पड़ती है। पाख़ाना उठाने वाले को हमारे देश मे सबसे नीच समझा जाता है। अभी तो उन जातियों को हमने आर्थिक चक्की से पीस रक्खा है और पेट के आगे उन्हे इज्जत-आत्मसमान का ख़्याल ही नही आता। लेकिन, किसी-न-किसी दिन वह आवेगा जरूर। फिर समाज को इस सबसे बड़ी सेवा के लिए सबसे ज़बर्दस्त लाञ्छना को सहने के लिए वे कैसे तैयार होंगे ? और, यदि उन्होंने पाखाना साफ करना छोड़ दिया तो चद ही दिनों में क्या हमारे महल सूने नही हो जायेंगे ? इङ्गलैड मे चले जाइये, वहाँ जो व्यक्ति रसोई बनाता है वह पाख़ाने में भी झाड़ू दे देता है। जापान मे देखिए, वहाँ तो पाख़ाना बेचने वाले कितने सम्भ्रान्त व्यापारी हैं। किसी को पाख़ाना उठाने मे घृणा नही है। हमारी दुनिया ही न्यारी है।

हर एक उपयोगी नई चीज को ग्रहण करने मे हम अपनी सस्कृति और सभ्यता की दुहाई देने लगते हैं। हैट, कोट, पतलून को देखकर हमारे कितने ही लोग नाक-भौं सिकोडते हैं। वित्त से अधिक ख़र्च करने का जहाँ तक सवाल है, वहाँ तक हम कुछ नही कहते, किन्तु ढीली-ढाली धोती या लम्बे-चौडे सलवार क्या काम करने वाले आदमी के लिए उपयुक्त हो सकते हैं ? अवबहियाँ कुर्त्ता, जाँघिया और सोला हैट (मोटा टोप) काम करने के लिए सबसे उपयुक्त पोशाक है। धूप से बचाने के लिए सोला हैट बडे काम की चीज है। इन चीजों को

५

तुम्हारी जात-पाँत की क्षय

हमारे देश को जिन बातों पर अभिमान है, उनमे जात-पाँत भी एक है। दूसरे मुल्कों में जात-पाँत का भेद समझा जाता है भाषा के भेद से, रंग के भेद से। हमारे यहाँ एक ही भाषा बोलने वाले, एक ही रंग के आदमियों की भिन्न-भिन्न जातें होती हैं। यह अनोखा जाति-भेद हिन्दुस्तान की सरहद के बाहर होते ही नहीं दिखलाई पडता। और, इस हिन्दुस्तानी जाति भेद का मतलब?—धर्म और आचार पर पूरा जोर देने वाले भिन्न जातिवालो के साथ खाना नहीं खा सकते, उनके हाथ का पानी तक नहीं पी सकते शादी का सवाल तो बहुत दूर का है। मुसलमान और ईसाई तक भी इस छूत की बीमारी से नहीं बच सके हैं—कम से कम ब्याह-शादी में। अछूतों का सवाल, जो इसी जाति-भेद का सबसे उग्र रूप है—हमारे यहाँ सबसे भयङ्कर सवाल है। कितने लोग शरीर छू जाने से स्नान करना जरूरी समझते हैं। कितनी ही जगहों पर अछूतों को सडकों से होकर जाने का अधिकार नहीं है। हिन्दुओं की धर्म-पुस्तकें इस अन्याय के आध्यात्मिक और दार्शनिक कारण पेश करती हैं। गाँधी जी अछूतपन को हटाना चाहते हैं, लेकिन

लेकिन विवाहित जोड़े के लिए समाज की सख्त हिदायत है कि कम से कम जवानी भर वे एक-दूसरे से खुले तौर पर न मिलें। दुनिया के सभी भागों में विवाहित स्त्री-पुरुष की अलग चारपाई नहीं होती। वहाँ चारपाई अलग होने का मतलब है तलाक की तैयारी। लेकिन हमारे यहाँ तो चारपाई ही अलग नहीं, सोने की जगहें भी अलग होनी चाहिए और शिष्टता का तक़ाजा है कि पति घर वालों की जानकारी में पत्नी के पास न जाये। विवाहित पुरुष अपनी पत्नी को अपने साथ नहीं रख सकता। चाहे वर्षों नौकरी या व्यापार में दूर-दूर रहना पड़े तो भी इस तरह की स्वतन्त्रता को शिष्टाचार के विरुद्ध समझा जाता है।

सारांश यह कि जिस अपने इतिहास और संस्कृति का अभिमान हम करते हैं वह हमें एक साधारण मनुष्य जैसा जीवन भी बिताने देना नहीं चाहती। खान-पान, रहन-सहन, शादी-ब्याह, स्वास्थ्य-सफाई, और भाईचारा—सभी में वह हमें दुनिया की नजर में जलील बनाना चाहती है। हमारे लिए सबसे अच्छा यही है कि अपने इतिहास को फाड़ कर फेंक दें और संस्कृति से अपने को वंचित समझ कर दुनिया की और जातियों से फिर क० ख० पढ़ना सीखें।

पिछले हज़ार बरस के अपने राजनीतिक इतिहास को यदि हम लें तो मालूम होगा कि हिन्दुस्तानी लोग विदेशियों से जो पददलित हो रहे हैं उसका प्रधान कारण जातिभेद है। जातिभेद, न केवल लोगों को टुकडे-टुकडे मे बाँट देता है, बल्कि साथ ही यह सबके मन मे ऊँच-नीच का भाव पैदा करता है। ब्राह्मण समझता है, हम बड़े हैं, राजपूत छोटे हैं। राजपूत समझता है, हम बड़े हे, कहार छोटे हैं। कहार समझता है, हम बडे हैं, चमार छोटा है। चमार समझता है, हम बड़े हैं, मेहतर छोटा है। और मेहतर भी अपने मन को समझाने के लिए किसी को छोटा कह ही लेता है। हिन्दुस्तान मे हज़ारों जातियाँ हैं और सब मे यही भाव है। राजपूत होने से ही यह न समझिए कि सब बराबर हैं। उनके भीतर भी हज़ारों जातियों हैं। उन्होंने कुलीन कन्या से व्याह कर अपनी जात ऊँची साबित करने के लिए आपस मे बड़ी-बडी लडाइयाँ लडी हैं और देश की सैनिक शक्ति का बहुत भारी अपव्यय किया है। आल्हा-ऊदल की लडाइयों इस विषय मे मशहूर हैं।

इस जातिभेद के कारण देशरक्षा का भार सिर्फ एक जाति के ऊपर रख दिया गया था। जहाँ देश की स्वतन्त्रता के लिए सारे देश को क़ुर्बानी के लिए तैयार रहना चाहिए, वहाँ एक जाति के कधे पर सारी जिम्मेदारी दे देना बड़ी ख़तरनाक बात थी। राजपूत जाति ने, जहाँ तक सैनिक-उत्साह का सम्बन्ध है, अपने को अयोग्य नहीं साबित किया, तो भी सिर्फ़ देशरक्षा

शास्त्र और वेद की दुहाई भी साथ ले चलना चाहते हैं; यह तो कीचड़ से कीचड़ धोना है।

अछूतपन को समझना दूसरे मुल्क के लोगों के लिए कितना कठिन है, इसका मै उदाहरण देता हूँ। १९३२ मे ब्रिटिश गवर्नमेंट ने जब अपना साम्प्रदायिक निर्णय दिया और गॉधी जी ने उस पर आमरण अनशन शुरू किया उस समय मै लंदन मे था। बहुत दिनों के बाद यह सनसनी-खेज ख़बर भारत के सम्बन्ध मे इग्लेंड के पत्रों मे छपी। उन्होंने मोटी-मोटी सुर्खियाँ देकर इसे छापा। जिन देशो में अस्पृश्यता नहीं है, वहाँ के लोग इस बारे मे क्या जाने? लदन यूनिवर्सिटी में पढनेवाले एक चीनी छात्र हमारे पास आये और उन्होंने पूछा—"अस्पृश्यता क्या है?" मैने कुछ समझाना चाहा। उन्होंने पूछा—"क्या कोई छूत की बीमारी होती है या कोढ की तरह का कोई कारण होता है, जिससे कि लोग आदमी को छूना नहीं चाहते?" मैने कहा कि आदमी स्वस्थ और तन्दुरुस्त हमारी ही तरह होते हैं, हॉ, अधिकाश की आर्थिक दशा हीन जरूर होती है। मै आध घटे से अधिक अस्पृश्यता के बारे मे समझाने की कोशिश करता रहा लेकिन देखा कि मेरे दोस्त के पल्ले कुछ पड नही रहा है। तब मैने अमेरिका के नीग्रो लोगों का उदाहरण देकर समझाना शुरू किया। अब यद्यपि मै थोड़ा-बहुत समझाने मे सफल हुआ, लेकिन तब भी यह उनकी समझ में नहीं आया कि एक ही रग और रूप के आदमियो मे अस्पृश्यता कैसी?

कि देश की स्वतन्त्रता फिर लौटी आ रही थी। लेकिन हमारी पुरानी आदतों ने वैसा होने नहीं दिया। शेरशाह के वंश के राजमंत्री बहादुर हेमचन्द्र ने एक बार चाहा क्या, दिल्ली के तख़्त पर बैठ भी गया; लेकिन राजपूतों ने बनिया कह कर उसका विरोध किया। दूरदर्शी सम्राट् अकबर ने सारे भारत को एक जाति में लाने का स्वप्न देखा लेकिन उसका वह स्वप्न स्वप्न ही रह गया। और उसके बाद के हिन्दू-मुसलमानों ने कभी उस जातीय एकता के ख़्याल को फूटी आँखों देखना पसंद नहीं किया। अंग्रेजों के हाथ में जाने से पहले भारत में सबसे बड़ा साम्राज्य मराठों का था, लेकिन वह भी ब्राह्मण-अब्राह्मण के झगड़ों के कारण चूर-चूर हो गया। हमारे पराभव का सारा इतिहास बतलाता है कि हम इसी जाति-भेद के कारण इस अवस्था तक पहुँचे।

आधी शताब्दी से अधिक बीत गई जब से कि कांग्रेस ने जातीय एकता क़ायम करने का बीड़ा उठाया। जो कुछ थोड़ी-बहुत एकता क़ायम करने में वह सफल हुई है, उसका फल भी हम देख रहे हैं और दो प्रान्तों को छोड़ कर बाक़ी सभी प्रान्तों के शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथ में है। (सिंध की सरकार भी कांग्रेस के प्रभाव को मानती है)। लेकिन कांग्रेस के नेताओं के मनोभाव को हम क्या देख रहे हैं? कांग्रेस के बड़े-बड़े हिन्दू जहाँ एक तरफ़ जातीय एकता के शोर से ज़मीन-आसमान एक करते रहते हैं, वहाँ दूसरी तरफ़ "भारतीय

की बात नहीं रह गई, वहाँ तो उसके साथ-साथ राजशक्ति का प्रलोभन भी उनमे बहुत बढा और इसी के लिए आपस मे वे बराबर लडने लगे। उनके सामने मुख्य बात थी ख़ास-ख़ास राजवशों की रक्षा करना। राजवशों के पारस्परिक वैमनस्य—जो कि राजशक्ति को हथियाने के कारण ही था—ने राष्ट्रीय सैनिक शक्ति को अनेकों टुकडो मे बॉट दिया और वे न एक साथ होकर विदेशियो से लड सकी। यदि जात-पॉत न होती तो और मुल्कों की तरह सारे हिन्दुस्तानी देश की स्वतन्त्रता के लिए लडते। जातीय एकता के कारण छोटे-छोटे मुल्क बहुत पीछे तक अपनी स्वतन्त्रता क़ायम रखने मे समर्थ हुए। इतना भारी देश हिन्दुस्तान जब कि बारहवी शताब्दी मे ही परतन्त्र हो गया, लका (सीलोन) का छोटा टापू जिसकी आबादी अब भी पचास लाख के क़रीब है—१८१४ तक परतन्त्र न हुआ था। बर्मा तो उससे साठ बरस और पीछे तक आजाद रहा है। हिन्दुस्तान के पड़ोस के इतने छोटे-छोटे मुल्क इतने दिनो तक अपनी स्वतंत्रता को क्यों क़ायम रख सके· और आज भी अफग़ानिस्तान जैसे देश क्यों आजाद हैं? इसीलिए कि वहाँ जाति इतने टुकडों मे विभक्त नहीं है। वहाँ ऊँच-नीच का भाव इतना नहीं फैला है, और, देश के सभी निवासी अपनी स्वतन्त्रता के लिए क्षत्रिय बनकर कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ सकते हैं।

हिन्दुस्तान के इतिहास में कई बार ऐसा समय आया, जब

मोमिन का सवाल छिड़ गया है, यद्यपि मुस्लिम नवाबों और सेठ-साहूकारों की बराबर कोशिश हो रही है कि बाजा और गोकुशी का सवाल रख कर निम्न श्रेणी के लोगों को उस प्रश्न से अलग रक्खा जाय। लेकिन निश्चय ही इसमें असफलता होगी। राष्ट्रीय नेता की दृष्टि बहुत व्यापक होनी चाहिए। उसका अध्ययन और अनुभव विस्तृत होता है, और इस प्रकार वह भविष्य पर दूर तक सोच सकता है, लेकिन उसकी यह शोचनीय मनोवृत्ति है। विहार प्रान्त के कांग्रेसी नेताओं और मिनिस्टरों के इस जात-पाँत के भाव ने बड़ा ही घृणित रूप धारण कर लिया है। मिनिस्टर अपनी जाति के मेम्बरों की ठोस जमात अपने पीछे रखकर उसी दृष्टि से काम करते हैं। और अवस्था यहाँ तक पहुँच गई है कि यदि दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं हुआ तो सार्वजनिक जीवन की गन्दगी पराकाष्ठा को पहुँच जायगी।

ये सारी गन्दगियाँ उन्हीं लोगों की तरफ से फैलाई गई हैं, जो धनी हैं या धनी होना चाहते हैं। सब के पीछे ख्याल है धन को बटोर कर रख देने या उसकी रक्षा का। गरीबों और अपनी मेहनत की कमाई खाने वालों को ही सबसे ज्यादा नुकसान है, लेकिन सहस्राब्दियों से जात-पाँत के प्रति जनता के अन्दर जो ख्याल पैदा किये गये हैं, वे उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति की ओर नजर दौड़ाने नहीं देते। स्वार्थी नेता खुद इसमें सबसे बड़े बाधक हैं।

संस्कृति" और हिन्दू-धर्म के प्रेम में किसी से एक इंच भी कम नहीं रहना चाहते। और, इसी कारण वे अपने-अपने छोटे से जातीय दायरे से ज़रा भी बाहर निकलने की हिम्मत नहीं रखते। कायस्थ कांग्रेस नेता कायस्थ जाति की एकता और उसके अगुआपन की परवाह बहुत ज्यादा रखते हैं। जब उनकी ब्याह-शादी या जन्म-मरण अपनी ही जाति के भीतर होने वाला है तो उनकी तो दुनिया ही कायस्थों के भीतर है। अपने कायस्थ रिश्तेदार को—चाहे वह योग्य हो या अयोग्य, उसके और उसके परिवार के लिए कोई जीविका का प्रबन्ध करना तो ज़रूरी है—कोई नौकरी दिलानी ही होगी और ऐसे जातिभक्ति के काम के लिए कोई भी अन्याय अन्याय नहीं, पाप पाप नहीं। भूमिहार कांग्रेस नेता है। जब तक भूमिहार जाति से अलग उसका नाता-रिश्ता नहीं, तब तक वह कैसे भूमिहार से बाहर की दुनिया को अपनी दुनिया समझेगा? हमारे नेताओं में जातीयता के ये भाव कितने ज़बर्दस्त हैं, यह सभी जानते हैं। इस भाव के कारण हमारा सार्वजनिक जीवन बहुत गन्दा हो गया है और राष्ट्रीय शक्ति सबल नहीं होने पाती। राजनीतिक दल तो पहले से ही हैं, इसमें जातीय दलबन्दी आकर और भी अवस्था को भयंकर बना देती है। यह जाति-भेद सिर्फ हिन्दुओं के ही राजनीतिक नेताओं में नहीं, बल्कि मुसलमान और दूसरे भी इससे बचे नहीं हैं। मुसलमानों के ऊँची जाति के नेताओं के स्वार्थ और अदूरदर्शिता के कारण वहाँ भी मोमिन और गैर-

की जो अपने स्वार्थ को अक्षुण्ण रखने के लिए जातीय संगठनों और जातीय एकताओं के सबसे बड़े पोषक थे। धन उनके पास था, और, विलायत जाने के लिये सबसे पहले वे ही तैयार हुए। जहाँ पहले विलायत जाने वाले जात से बहिष्कृत किये जाते थे, वहाँ आज वे ही जात के चौधरी हैं। दरभंगा, बीकानेर को ही नहीं, दूसरी जातियों के अगुओं को भी देख लीजिए। सभी जगह विलायत में सब तरह के लोगों के साथ, सब तरह का खाना खाकर लौटे हुए लोग ही आज नेता के पद पर शोभित हैं। आई० सी० एस० दामाद पाने वाला ससुर अपने को निहाल समझता है।

पिछले बीस बरसों से रोटी की एकता बड़ी तेज़ी के साथ कायम हो रही है। १६२१ से पहले हिन्दू होटल शायद ही कहीं दिखलाई पड़ते थे। लेकिन आज छोटे-छोटे शहरों में ही चार-चार छै-छै दर्जन होटल नहीं हैं, बल्कि छोटे-छोटे स्टेशनों पर भी खुल गये हैं। कुछ साल पहले तक किसको पता था कि छपरा स्टेशन के प्लाटफार्म पर हिन्दू खोमचा वाला गोश्त पराठे बेचता फिरेगा। मेरे एक दोस्त एक दिन पटने में किसी होटल में भोजन करने गये। उनकी क्यारी की बगल में एक लड़का बैठा था। और उसकी बगल में एक तिरहुतिये ब्राह्मण चन्दन-टीका लगाकर बैठे थे। क्यारी छोटी थी और लड़के का हाथ ब्राह्मण देवता के शरीर से छू गया। वह उस पर आग-बबूला हो गये; डाँट कर जात पूछने लगे। हमारे

संसार की रविश हमे बतला रही है कि हम अधिक दिनों तक इस जातीय भेदभाव को क़ायम नहीं रख सकते। दुनिया की चाल को देखकर अब हिन्दुस्तान के अछूत अछूत रहने को तैयार नहीं हैं—अर्ज़ल (निम्नजाति) अर्ज़ल रहने को तैयार नहीं हैं। अछूत और अर्जल रखकर सिर्फ उनके साथ अपमान-पूर्ण बर्ताव ही नहीं किया जाता, बल्कि आर्थिक स्वतंत्रता से भी उन्हे वंचित किया जाता है। फिर वे कब समाज में सहस्राब्दियों से पहले निर्धारित किये स्थान पर रहना पसन्द करेंगे और आज़ादी के दीवाने तो इस प्रथा के विरुद्ध ज़हाद बोल चुके हैं। वे इसके लिए सब तरह की क़ुर्बानियाँ करने को तैयार हैं। उनके लिए राजनीतिक युद्ध से यह सामाजिक युद्ध कम महत्त्व नहीं रखता। वे जानते हैं कि जब तक जातियों की खाइयाँ बंद न की जायेंगी तब तक जातीय एकता की ठोस नींव रक्खी नहीं जा सकती। वे जानते हैं कि इस बात में मज़हब उनका सबसे बडा बाधक है। लेकिन वे मजहब की परवाह कब करने वाले है। वे तो जात-पाँत के साथ हिंदू धर्म और इस्लाम धर्म को एक ही डंडे से मारकर समुद्र मे डुबायेंगे।

देखने में जात-पाँत की इमारत मज़बूत मालूम होती है, लेकिन इससे यह न समझना चाहिए कि उसकी नींव पर करारी चोट नहीं लग रही है। जातीय भेद के दो रूप हैं—एक रोटी मे छूत-छात, दूसरे बेटी मे असहयोग। रोटी में छूत-छात की बात उन्हीं धनिकों ने सबसे पहले तोड़नी शुरू

मैं—"आप भी साथ हैं ? क्या आप सारे हिन्दुस्तानियों की रोटी-बेटी एक कराने के लिए तैयार हैं ?"

मौलाना—"इसकी क्या जरूरत ?"

मैं—"क्योंकि ग़रीब तब तक आज़ादी हासिल नहीं कर सकते, तब तक अपनी कमाई स्वयं खाने का हक पा नहीं सकते जब तक कि वे एक होकर अपने चूसने वालों के—चाहे वे देशी हों या विदेशी—का मुक़ाबला करके उन्हें परास्त नहीं करते।"

मौलाना—"रोटी तक तो हम आपके साथ हैं, लेकिन बेटी में नहीं।"

मौलाना—"रोटी तक तो हम आपके साथ हैं, लेकिन बेटी में नहीं।"

पास ही एक पण्डित जी बैठे हुए थे, जो बात-चीत से वकील मालूम होते थे। वह झट बोल उठे—"आप लोग तो दूसरे मुल्कों के साँचे में हिन्दुस्तान को भी ढालना चाहते हैं। आप लोग यह सोचने की तकलीफ गवारा नहीं करते कि हिन्दुस्तान धर्मप्राण मुल्क है, इसकी सभ्यता और संस्कृति निराली है। भारत यूरोप नहीं हो सकता। रोटी की तो बात, ख़ैर, एक होती देखी जा रही है, लेकिन बेटी एक होने की बात कह कर तो आप शेख़चिल्ली को भी मात करते हैं।"

मैं—"कुछ बरसों पहले रोटी की एकता भी शेख़चिल्ली की ही बात थी। ख़ैर, आज आप उसे तो क़बूल करते हैं न ? बेटी की भी बात शेख़चिल्ली की नहीं। बीस बरस पहले के

साथी ने लडके को चुपके से समझा दिया—कह दो रैदास भगत (चमार)। लड़के ने जब ऐसा कहा तो ब्राह्मण का कौर मुँह का मुँह मे ही रह गया। वह अभी बोलने को कुछ सोच ही रहे थे कि आस-पास के लोग उनपर बिगड उठे—यह होटल है, यहाँ दाल-भात की बिक्री होती है। तुमने जात-पाँत क्यों पूछी? ब्राह्मण देवता को लेने के देने पड गये। यदि खाना छोड़ कर जाते हैं, तो यही नही कि पैसे दंड पड़ेंगे, बल्कि सब लोगो को खुल कर हँसी उडाने का मौका मिलेगा। इसलिए बेचारे ने सिर नीचा करके चुपचाप भोजन कर लिया।

रोटी की छूत का सवाल हल सा हो चुका है। शिक्षित तरुण इसमे हिन्दू-मुसलमान का भेद-भाव नही रखना चाहते। लेकिन बेटी का सवाल अब भी मुश्किल मालूम पडता है। एक दिन रेल मे सफर करते मुझे एक मुसलमान नेता मिले। वह समाजवादियो के नाम से हद से ज्यादा घबराये हुए थे। बोले "समाजवादी, ख़ैर, लोगो की गरीबी दूर करना चाहते हैं, इस्लाम भी मसावात् (समानता) का प्रचारक है; लेकिन वे मजहब के ख़िलाफ क्यो हैं?"

मै—"साम्यवादी मज़हब के खिलाफ अपनी शक्ति का तिल भर भी खर्च करना नही चाहते। वे तो चाहते हैं कि दुनिया मे सामाजिक अन्याय और गरीबी न रहने पाये।"

मौलाना—"इसमे हम भी आपके साथ ह।"

चीज़ है और वह मज़हबों और जातों की चहारदीवारियों को ढाकर ही क़ायम की जा सकती है। हमारी रविश जिस बात को अवश्यम्भावी बतला रही है, जिसे किये बिना हमारे लिये दूसरा कोई रास्ता नहीं, उसके करने में इतनी ढिलाई दिखलाना क्या सरासर बेवक़ूफ़ी नही है?

हिन्दुस्तानी जाति एक है। सारे हिन्दुस्तानी, चाहे वे हिन्दू हों या मुसल्मान, बौद्ध हों या ईसाई, मज़हब के मानने वाले हों या ला-मजहब; उनकी एक जाति है—हिन्दुस्तानी, भारतीय। हिन्दुस्तान से बाहर, युरोप और अमेरिका मे ही नहीं, पड़ोस के ईरान और अफ़गानिस्तान मे भी हम इसी—हिन्दी—नाम से पुकारे जाते हैं। हिन्दू सभावाले अपने भीतर की जातियों को तोड़ने के लिए चाहे उतना उत्साह न भी दिखलाते हों, लेकिन वे मौक़े-बेमौक़े यह घोषणा जरूर कर दिया करते हैं कि हिन्दू जाति अलग है। मुस्लिम लीग ने तो बीड़ा उठाया है कि मुसलमानों की हमेशा के लिये अलग जाति बनायी जाय। वह तो बल्कि इसी विचार के अनुसार हिन्दुस्तान को अलग हिस्सों में बाँटना चाहती है। नौ करोड़ मुसल्मानों मे सात करोड़ तो सीधे ही वह ख़ून अपने शरीर मे रखते हैं, जो कि हिन्दुओं के बदन में है। और, बाक़ी दो करोड़ मे कितने हैं जो कलेजे पर हाथ रखकर कह सकते हैं, कि उनमें चौथाई भी ग़ैर-हिन्दुस्तानी ख़ून है? जाति का निर्णय ख़ून से होता है। और, इस कसौटी से परखने पर दुनिया का कोई भी आदमी—हिन्दुस्तान

चौके-चूल्हे को देखकर किसको आशा थी कि हमें आज का दिन देखना पड़ेगा ! हिन्दू खुल्लम-खुल्ला मुसलमान और ईसाई के साथ खाना खाते हैं, लेकिन बिरादरी की मज़ाल है कि उनसे नाता-रिश्ता तोड़े ! हिन्दू-मुसलमानों की शादियाँ होनी शुरू हो गई हैं। पंडित जवाहर लाल की भतीजी ने मुसलमान से शादी की है, और बिना क़लमा पढ़े। आसफ अली की बीबी अरुणा ने इस्लाम धर्म को स्वीकार नहीं किया। प्रोफेसर हुमायूँ कबीर ने भी इसी तरह की शादी बंगाल में की है। ऐसी मिसाले दर्जनों मिलेगी, जिनमे हिन्दू युवतियों ने बिना मज़हब बदले शादियाँ की हैं। हिन्दू नवयुवक भी धरम की जजीर तोड़ कर शादी करने लग गये हैं। गोरखपुर के श्री श्यामाचरण शास्त्री ने बिना शुद्धि के मुसलमान लड़की से शादी की है। गुजरात के एक सम्भ्रान्त कुल के हिन्दू युवक ने एक प्रतिष्ठित मुसल्मान-कुल की सुशिक्षिता लड़की से शादी की है। यह निश्चित है कि दिन प्रति दिन ऐसे व्याहों की संख्या बढ़ती ही जायेगी। समाज के ज़बर्दस्त बाँध में जहाँ सुई भर का भी छेद हो गया, वहाँ फिर उसका क़ायम रहना मुश्किल है।"

जात-पाँत तोड़कर एक धर्म के भीतर शादियाँ तो और भी ज़्यादा हैं। लेकिन हमारे देश का दुर्भाग्य है कि जिस काम को अवश्य करना है, उसे भी लोग बहुत धीमी चाल से करना चाहते हैं। ठोस जातीय एकता हमारे लिये सबसे आवश्यक

६

तुम्हारी जोंकों की चय

जोंकें?—जो अपनी परवरिश के लिए धरती पर मेहनत का सहारा नहीं लेती। वे दूसरों के अर्जित खून पर गुज़र करती हैं। मानुषी जोंकें पाशविक जोंको से ज्यादा भयकर होती हैं। इन्होंने मानव जीवन को कितना हीन और संकटपूर्ण बना दिया, इसका ज़िक्र कुछ पहले हो चुका और आगे भी कुछ करेंगे। इन जोंकों की उत्पत्ति कैसे हुई?—आरंभिक मनुष्य असभ्य था, वह जगल मे रहता था। लेकिन अपनी जीविका वह धरती में खोजता था। वह शिकार करता था। वह जगल के फल तोड़ता था, लेकिन दूसरे की कमाई, दूसरे के ख़ून को चूस कर गुज़ारा करना पसन्द नहीं करता था। आत्मरक्षा के लिए वह अपना नेता भी बनाता था। समाज का साधारण सगठन भी करता था। लेकिन चूसनेवालो के लिए वहाँ स्थान न था। शिकारी अवस्था से मनुष्य पशु-पालक की अवस्था मे आया। अब भी उसके नायक और शासक ख़ुद अपनी भेड़ और गाये रखते थे। हाँ, अब कभी-कभी एक आध भेड़-गाय उनके पास पहुँचने लगी और इस प्रकार बहुत हल्के रूप में मानुषी जोंकों का आविर्भाव हुआ। कृषक की अवस्था में

से बाहर—हिन्दुस्तान के मुसलमानों की अलग क़ौम मानने को तैयार नहीं हो सकता। भाषा मे ज़बर्दस्ती अरबी के शब्दो को लाद कर तुम अलग कौम नही बना सकते। तीन-चौथाई अरबी शब्द बोलकर हिन्दुस्तानी मुसलमान न अरब मे जाकर हिन्दी छोड कर दूसरा कहला सकता है और न अरबी जबान को वह अपनी मातृभाषा ही बना सकता है। हमारे नौजवान इस बॅटवारे को अधिक दिनो तक बर्दाश्त नही कर सकते। नई सन्तानो के लिए तो अच्छा होगा कि हिन्दुओं की औलाद अपने नाम मुसलमानी रक्खे और मुसलमानो की औलाद अपने नाम हिन्दू रक्खे, साथ ही मज़हबो की जबर्दस्त मुखालफ़त की जाय। सूरत-शकल के बनावटी भेद को भी मिटा दिया जाय। इस प्रकार मजहब के दीवानो को हम अच्छी तालीम दे सकतें हैं।

निश्चय है कि जात-पॉत की क्षय करने से हमारे देश का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

राजा का वध कर नये राजवंश की नींव नहीं डालता। जब से राजा अधिक सम्पत्ति का स्वामी और ग़ैरजवाबदेह शासक बनने लगा, तब से यथा राजा तथा प्रजा का अनुकरण करते हुए कितने ही लोग स्वयं भी जोंक बनकर आराम से सुख और चैन की ज़िन्दगी बसर करने लगे। राजा भी प्रलोभन दे-देकर उन्हें इसके लिए उत्साहित करते थे। धरती से धन पैदा करने वाले का स्थान समाज में बहुत नीचा हो गया था और राजा, राजकुमार, पुरोहित, मन्त्री सामंत ही नहीं; बल्कि उनके परिचारक भी धन कमाने वालों से अधिक सम्मानित समझे जाते थे। शारीरिक श्रम को बहुत हेच दृष्टि से देखा जाता था। अब जोंकों की एक और श्रेणी भी पैदा हो गई जो कारीगरों और किसानों द्वारा उत्पादित चीज़ों के क्रय-विक्रय का काम करती थी। इन साधारण बनियों ने लाभ-वृद्धि के साथ-साथ अपने काम को भी अधिक विस्तृत और सुव्यवस्थित किया। इनके बड़े-बड़े दल (कारवाँ) देश के एक कोने की चीज़ें दूसरे कोने में पहुँचाते और आँख मूँद कर नफा कमाते थे। राजा, राजकुमारों के बाद अपनी राज-सेवा के उपहार में जिन मन्त्रियों और सेना-नायकों को बड़ी-बड़ी जागीरें मिलीं, वे भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे, और उनके बाद नम्बर था बनियों का। समाज में अब भी पुराना भाव कभी-कभी मौज मारता था, जब कि किसान की कमाई को सबसे शुद्ध कमाई समझा जाता था। राज-चाकरी और वाणिज्य को निम्न श्रेणी की जीविका मानते थे,

पहुँचने पर नेता और शासकों का प्रभाव और बढ़ा। उन्होंने राजा का रूप धारण करना शुरू किया। यद्यपि पहले समाज की आत्मरक्षा के लिए शस्त्र और शासन की सुव्यस्था का भार उन पर सौंपा गया था, और उनका पद तभी तक सुरक्षित था, जब तक कि उन कार्यों के सञ्चालन की योग्यता उनमें मौजूद रहती। योग्यता द्वारा निर्वाचित राजा भेंट और कर में अधिक धन एकत्र करने में सफल हुआ और इस प्रकार योग्यता के अतिरिक्त धन की शक्ति उसके हाथ आई। अब जहाँ वह अपने शासक और नेता होने के ज़रिये लोगों पर प्रभाव डालता था, वहाँ धन का प्रलोभन देकर के भी कुछ लोगों को अपनी ओर खींच सकता था। इस तरह वह जहाँ कितने ही अत्याचार भी करने का साहस रखता था; वहाँ साथ ही यह भी कोशिश करने लगा कि उसके बाद उसका स्थान उसके लड़के को मिले। शताब्दियों के प्रयत्न से योग्यता का सबब भाड़ में चला गया और राजा की ज्येष्ठ संतान राजा बनने लगी। संपूर्ण राज-परिवार का ख़र्च दूसरों के ऊपर लदने लगा। इन जोंकों ने यही नहीं कि अपनी परवरिश दूसरों की कमाई से चलानी शुरू की, बल्कि कितने ही धरती से धन उपजाने वाले लोगों को भी नौकर-परिचारक रखकर समाज को उनके श्रम से वञ्चित रक्खा। ख़ानदानी राजा तब तक इस प्रकार शोषण, निठल्लापन और अपनी वासना-तृप्ति के लिए तरह-तरह की गन्दगी फैलाते रहते जब तक कि जनता को ऊबते देखकर कोई सेनापति या मन्त्री

बढना ज़रूरी था। फिर उनकी जागीरें बढीं और हालत यहाँ तक पहुँची कि राजा सामन्तों के हाथ की कठपुतली हो गया।

शिकार और कृषि के साथ पहले जोंकों का जन्म होता है। राजशाही युग में उनकी संख्या कुछ बढती है और राजकुमार, राजकर्मचारी, व्यापारी तथा इनके परिचारक जोंकों की श्रेणी में शामिल होकर संख्या को और बढा देते हैं। जब राजा सामन्तों के हाथ की कठपुतली हो जाते हैं तब सामन्तों की स्वेच्छाचारिता का पृष्ठपोषण करना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं—ऐसी सामन्तशाही के युग में जोंकों की संख्या कई गुनी बढ जाती है। इस युग का अन्त होने के समय यूरोप के बनियों को अपना प्रभाव बढाने का नया मौक़ा मिलता है। "वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः" की कहावत प्रसिद्ध ही है। इगलैंड के व्यापारी भी पुर्तगाल, स्पेन आदि के व्यापारियों की देखादेखी दुनिया के दूर-दूर देशों में व्यापार करने लगे। इगलैंड में उनके पास अपार सम्पत्ति जमा होने लगी। यूरोप के भिन्न-भिन्न देशो मे व्यापार के सम्बन्ध मे प्रतिद्वन्द्विता बढ़ने लगी, तो भी धरती का बहुत सा हिस्सा अछूता था और सभी साहसियों के लिए कहीं न कही काम का क्षेत्र मौजूद था। अट्ठारहवी शताब्दी के अन्त तक यूरोप के व्यापारियों मे अगरेजो ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था। उनके पास दुनिया मे सबसे अधिक बाज़ार थे। उनके माल से भरे जहाज़ इगलैंड से बाजारो को और बाजारों से इंगलैंड को छै-छै महीने चलकर पहुँचते थे। उस

लेकिन दुनिया का सुख और वैभव तो उसीके लिए है, जिसके पास धन है चाहे वह धन किसी भी तरह प्राप्त किया गया हो। राज-कार्य और व्यापार की तो बात ही क्या, सूद के लाभ—जिसे कि पाप का धन अभी हाल तक समझा जाता रहा है—को भी कोई छोड़ने के लिए तैयार न था। सामन्त दासों और अर्द्ध-दास किसानो की पलटन से खेती कराते तथा कारीगरों से बेगार मे चीज़े तैयार कराते। व्यापारी स्थल और जलमार्ग से व्यापार ही नही करते थे, बल्कि कभी-कभी कुछ कारीगरो को जमा कर उनसे वाणिज्य की कितनी ही चीजे भी बनवाते थे। बिना मेहनत की कमाई अब सबसे इज्ज़त की कमाई हो गई थी। और क्यो न हो, जबकि हजारों बरस से पुरोहित लोग ख़ुद इस लूट के नफे से मौज़ करते आ रहे थे। उन्ही के हाथ मे भले-बुरे की व्यवस्था थी।

बढते-बढते अवस्था जब यहाँ तक पहुँची कि समझा जाने लगा कि राजा अपनी पुरानी तपस्या का उपभोग करने या ख़ुदा की न्यामत को हासिल करने के लिए धरती पर आया है; तब बहुत हुआ तो राजवंश के संस्थापक प्रथम व्यक्ति ने कुछ योग्यता का परिचय दिया और उसके उत्तराधिकारी—चाहे योग्य हो या अयोग्य—सिर्फ भोग-विलास के लिए राज-सिंहासन पर बैठते थे। मुफ्त के भोग-विलास को देखकर किसके मुँह मे पानी न भर आता, और उसके लिए जब राजा लोग आपस मे लडने लगते, तो योग्य सेनानायकों का महत्त्व

दुनिया का बाज़ार पड़ा हुआ था। इस प्रकार वहाँ के पूँजीपति सभी कारीगरों को बेकार न करके उन्हें नये-नये कारख़ानों में लगाते जाते थे। जैसे ही जैसे व्यापार चमकता गया, वैसे ही वैसे पूँजीपतियों के पास अपार धनराशि जमा होती गई। वहाँ का राज-शासन भी पूंजीपतियों के हाथ चला गया। और राजशाही या सामन्तशाही सरकार की जगह पूँजीवादी सरकार स्थापित हुई। इसका पवित्र कर्त्तव्य था पूँजीपतियों के स्वार्थों की रक्षा करना।

इस नई आर्थिक व्यवस्था से संसार में तरह तरह की उथल-पुथल होने लगी। देश के श्रमिक पूँजीपतियों के अर्थदास बनने लगे। जिन देशों पर पूँजीवादियों का शासन था; वहाँ पर भी उसी स्वार्थ को सामने रखकर काम लिया जाने लगा। इंगलैंड में सामन्तशाही का स्थान पूँजीशाही ने लिया था, किन्तु हिन्दुस्तान में उस वक़्त तक सामन्तशाही ही चल रही थी। तो भी अंगरेज़ी पूँजीशाही ने अपने देश की तरह हिन्दुस्तान मे सामन्तशाही को लुप्त होने नहीं दिया। उसी का परिणाम है कि यद्यपि सारे भारतवर्ष पर अंगरेज़ी पूँजीशाही का शासन है, तो भी भीतर में सामन्तशाही को रियासतों और बड़ी-बड़ी ज़मींदारियों के रूप में क़ायम रक्खा गया है। पूँजीवाद मनुष्यों को अर्थदास बनाता है और बराबर बेकारी पैदा कर के उन्हें नरक की यातना मे ढकेलता है, यह बात तो अब स्पष्ट हो चुकी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक

समय का लकड़ी की नावों—जिन्हें पाल और पतवार के सहारे एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता था—में यात्रा बड़ी सकट की थी; लेकिन अपार नफे के सामने सकट क्या चीज़ थी! व्यापारियों को सबसे अधिक चिन्ता थी—अधिक से अधिक परिमाण में माल कैसे तैयार हो! इसी समय इगलैंड में इजिन का आविष्कार हुआ। भाप से चालित यन्त्र अधिक परिमाण मे और ज़्यादा तेज़ी के साथ माल तैयार करने लगे। इंजिनों को रेल और जहाज़ मे लगा देने पर लम्बी-लम्बी यात्राएँ भी छोटी हो गईं और ख़तरा तथा परतन्त्रता भी कम होती गई।

यन्त्रों के आविष्कार से, उनके द्वारा बनी चीज़ों की अपेक्षा हाथ की बनी चीज़े महँगी पड़ने लगीं और हाथ के कारीगर बेकार होने लगे। बेकारी से कुपित होकर कारीगरों ने कितने ही कारख़ानों को तोड़ा; जगह-जगह बलवे हुए। लेकिन, अब व्यापारियों की शक्ति साधारण नही रह गई थी। धन के कारण राज-दरबारों मे उनका प्रभाव और सम्मान सामन्तों की तरह होने लगा था और धन के बल पर शासन-यन्त्र पर वह अपना अधिकार जमा रहे थे। जिस यन्त्रचालित कारख़ानेदार—पूँजी-पति—के पीछे राज-शक्ति थी, उसका मुक़ाबला ये कारीगर क्या करते! धीरे-धीरे उनके बलवे भी ठंढे पड़ गये। जिसमें दमन के अतिरिक्त एक यह भी कारण था कि यान्त्रिक कारख़ाने मुख्यतः इंग्लैंड में ही स्थापित हुए थे और इगलैंड के पास सारी

की जोंको ने समझा कि साम्यवाद हमेशा हवा और आसमान की चीज़ रहेगा और उसे कभी ठोस ज़मीन पर उतरने का मौक़ा नही मिलेगा ।

पूँजीवाद धीरे-धीरे हर मुल्क में बढ रहा था । यूरोप मे तो उसकी गति बड़ी तेज़ थी । अत में सिपाहियो का देश जर्मनी भी उसकी बाढ़ से न बच सका । बल्कि प्रतिभाशाली जर्मनों ने यत्रो के आविष्कार और प्रयोग मे और भी अधिक योग्यता दिखलायी । पूजीवादी सरकारों ने दाव-पेच लगाकर दुनिया के हिस्से-बखरे कर लिये । जर्मनी ने देखा कि उसके लिए तो कही जगह नही । इसके लिए उसने वर्षों की तैयारी की, क्योंकि वह जानता था कि हथियार के बलपर ही उसे नया बाजार मिल सकता है । इसी आकाक्षा, इसी तैयारी का परिणाम था १९१४ का महायुद्ध । पूँजीवादी फैक्टरियों मे गरीबों का ख़ून चूस कर तृप्त न थे । वे बाज़ार और नफा लूटने के लिए बड़े पैमाने पर नरसंहार करना चाहते थे । जो कहते हैं कि महायुद्ध आस्ट्रिया के युवराज की हत्या के कारण हुआ था, वे या तो भोले-भाले हैं या जान-बूझ कर झूठ बोलते हैं । युद्ध हुआ था जोंको की ख़ून की प्यास के कारण । जर्मनी की जोंकें परास्त हुईं । फ्रास और इगलैड की जोंकें विजयी । इन जोंको की लडाई मे एक फायदा हुआ कि दुनिया के छठे हिस्से-रूस से जोंकों का राज उठ गया । अब वहाँ ईमानदारी से कमाकर खानेवालों का राज है । आरभ मे दुनिया की जोंको

बाज़ारों और साम्राज्य के विस्तार के लिए आपस में लड़ती यूरोप की राजशक्तियों ने यह भी दिखला दिया था कि पूंजीवाद युद्धों का प्रधान कारण है। इसी समय जर्मनी में एक विचारक पैदा हुआ, जिसका नाम था कार्ल मार्क्स। उसने बतलाया कि बेकारी और युद्ध पूंजीवाद के अनिवार्य परिणाम रहेंगे, बल्कि जितना ही पूँजीवाद की संरक्षकता में यंत्रों का प्रयोग बढ़ता जायेगा, बेकारी और युद्ध उतना ही भयानक रूप धारण करते जायेंगे। उसने इससे बचने का एक ही उपाय बतलाया—साम्यवाद। जर्मनी, फ्रांस—जहाँ भी उसने अपने इन विचारों को प्रकट किया, वहाँ की सरकारें उसके पीछे पड़ गईं। पूँजीपति समझ गये कि साम्यवाद उनकी जड़ काटने के लिए है। उसमें तो सारी सम्पत्ति का मालिक व्यक्ति न होकर समाज रहेगा। उस वक़्त हरएक को अपनी योग्यता के मुताबिक काम करना पड़ेगा और आवश्यकता के मुताबिक जीवन-सामग्री मिलेगी। सब के लिए उन्नति का मार्ग एक-सा खुला रहेगा। कोई किसी का नौकर और दास नहीं रहेगा। भला धनी इसे कब पसन्द करने वाले थे? लेकिन अभी तक मार्क्स के विचार सिर्फ हवा में गूँज रहे थे। मजदूरों पर उनका असर बिलकुल हल्का-सा पड़ रहा था, इसलिए पूँजीवादियों का विरोध बहुत तेज न था—ख़ास करके जब कि उन्होंने देखा कि एक समय के आग उगलनेवाले प्रलोभनों को हाथ में आया पाकर पूँजीवाद के सहायक बन सकते हैं। दुनिया

को कोई नुक़सान तो था नहीं; दूसरे, उसे थैली से मदद दी जाय। और यह बात भी पूँजीपतियों के लिए कड़वी नहीं थी; क्योंकि उनके हाथ से सारी की सारी थैली को मजदूर छीन लेनेवाले थे। इस प्रकार पूँजीवाद ने नया रूप—फासिज्म धारण किया। उसने अपने असली उद्देश्य को छिपाकर सामन्तशाही के विनाशक पूँजीवाद के हथकंडे इस्तेमाल किये और राष्ट्रीयता के नाम पर जनता को अपने झंडे के नीचे एकत्रित होने के लिए आवाहन किया। वर्षो से मज़दूर और किसान अपने शिक्षित मध्यम श्रेणी के साम्यवादी नेताओं की कायरता और विश्वासघात से तंग आ गये थे। उन्होंने फासिज़्म को राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन का संदेशवाहक समझ कर मदद दी। और इस प्रकार फिर से पूँजीवाद ने अपने को मज़बूत किया। शोषकों और शोषितों को क़ायम रखने वाले फासिस्त श्रमिकों के दुःखों को भीतर से तो दूर कर नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने दूसरे देशों पर नज़र गड़ायी। इटली में फासिज्म के जन्म का यह इतिहास है।

जर्मनी की जोंकें भी महायुद्ध में पराजित हुईं, लेकिन विजेता कभी यह नहीं चाहते थे कि पराजित जोंकें बिल्कुल नष्ट कर दी जाएँ। वह जानते थे कि जर्मनी में जोंकों का लोप इंगलैंड और फ्रांस पर पूरा प्रभाव डालेगा। इसीलिए उन्होंने उन्हें जीते रहने दिया। लड़ाई के बाद जर्मनी के श्रमजीवी भी अपने देश की जोंकों के अत्याचार देखते-देखते तंग आ गये थे

ने पूरी कोशिश की कि वहाँ साम्यवादी शासन क़ायम न होने पावे। लेकिन रूस के मज़दूरों और किसानो ने हर तरह की क़ुर्बानी करके, जान पर खेलकर अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की। लेनिन के नायकत्व मे संस्थापित रूस की साम्यवादी सरकार आज दुनिया की जोको की आँखो मे काँटे की तरह चुभ रही है। सारा पूजीवादी जगत देख रहा है कि दुनिया के सभी मज़दूर-किसान रूस की तरफ स्नेह भरी निगाह से देखते हैं और उससे अन्तःप्रेरणा ले रहे हैं।

महायुद्ध के अन्त में जोकों की रक्त-पिपासा के नगे नाच को देखकर तथा रूस की क्रान्ति से प्रभावित होकर, यूरोप के कितने ही देशो के मज़दूरो मे साम्यवाद का ज़ोर बढा। सामग्री तैयार थी, उसका उपयोग करके वहाँ भी साम्यवादी शासन स्थापित करने के लिये। लेकिन श्रमजीवियो का नेतृत्व जिन कमजोर दिलवाले शिक्षितो के कन्धो पर था, उन्होने अपनी कायरता और कमज़ोरी को जनता के मत्थे मढा और इस प्रकार श्रमजीवी-जागृति का वह वेग विशृखलित हो गया। पूँजी-पतियो और अवसरवादियो ने उस अवसर से फायदा उठाया। पूँजीपति महत्वाकाक्षी साम्यवादी नेताओ—जो कि आपस की होड़ और अनबन के कारण अपने लिए किसी बड़ी चीज की आशा न रखते थे—को आसानी से अपनी ओर मिला सकते थे; इसके लिए सिर्फ दो चीज़ो की जरूरत थी, एक तो उस आदर्श द्रोही नेता को नेतृत्व दे दिया जाय और इसमें पूँजीवाद

और वृहत्तर जर्मनी के निर्माण का प्रोग्राम उनके सामने रक्खा। फ्रास और इंगलैंड का पूँजीवाद पूँजीपतियो के वैयक्तिक स्वार्थ और अदूरदर्शिता के कारण श्रमजीवी जनता को अपनी ओर उतना खींच नही सकता था इसीलिए उन्हें फूँक-फूँक कर क़दम रखना पडता था। उधर जर्मनी पूँजीपतियों के स्वार्थ को आँख के ओझल रखकर राष्ट्रीय महत्त्वाकाक्षा की जबर्दस्त शराब पिला रहा था। दोनों ही तरफ जोंको के स्वार्थ का सवाल था। और, दोनों ही तरफ की जोंके अपने-अपने स्वार्थ के लिए जबर्दस्त तैयारियाँ कर रही थी।

तीन वर्ष की तैयारी के बाद हिटलर ने जर्मन-स्वाभिमान लौटाने के लिए सब के पहले कुछ करना चाहा। जापान ने मंचूरिया को हड़प कर दिखला दिया था कि इगलैंड, फ्रास और अमेरिका के पूँजीवादी आपस मे असहमत और लडाई के लिए तैयार नहीं हैं। वह फ्रास और इगलैंड के भीतरी मतभेदों को भी जानता था और समझता था कि इगलैंड सिर्फ अपनी पगड़ी बचाना चाहता है। यही समझकर ७ मार्च १९३६ को हिटलर ने जर्मन फौजे राइनलैंड मे उतार दीं और फ्रास, तथा इगलैंड मुँह ताकते रह गये। दो बरस चार दिन बाद—जब कि मुसोलिनी अबीसीनिया मे इंगलैंड की क़लई खोल चुका था—११ मार्च १९३८ को हिटलर ने आस्ट्रिया को हडप लिया! बाहर की जोंके तिलमिला कर रह गईं। लेकिन जर्मन जोंकों की प्यास न इतने से बुझ सकती थी और न जर्मन जनता को चिर-

और उनमें बड़ी जागृति हुई; तो भी शब्द के प्रयोग में प्रवीण, किन्तु मैदान में अत्यत कायर शिक्षित नेतागण ने उन्हें धोखा दिया; और वे स्वर्णयुग को लाने का दिलासा दे देकर दिन बिताते रहे। जोंकें इतनी बेवकूफ न थी। वे अवसर ताक रही थी। जब साम्यवादी इस तरह अपने क़ीमती समय को बर्बाद कर रहे थे, उस समय जोंकें भी मनसूबे बाँध रही थी। युद्ध के बाद की घटनाओं को देखकर पूँजीवादियों को विश्वास हो गया कि उनके स्वार्थों की रक्षा वही कर सकता है वे जो स्वयं श्रमजीवी श्रेणी का हो और जिसके दिल में पूँजीवादी श्रेणी के अस्तित्व की आवश्यकता ठीक जँचती हो। नात्सिज्म ने जर्मनी मे जातीय पराभव और अपमान के नाम पर लोगो को अपनी ओर खीचना शुरू किया। पूँजीवादियो ने हिटलर के भूरी कमीज़ वाले संगठन को दृढ करने के लिए अपनी थैलियाँ खोल दी। नेताओं के विश्वासघात से पीड़ित और कर्त्तव्य-विमूढ श्रमजीवि-श्रेणी धीरे-धीरे हिटलर के फरेब मे फँसने लगी और १९३३ तक उसने अपनी शक्ति इतनी मजबूत कर ली कि शासन की बागडोर उसके हाथ आ गई। हिटलर के शासन के चार वर्षों—१९३३ से १९३७ के बीच मजदूरों की जीवनवृत्ति जर्मनी मे आधी हो गई और पूँजीपति चैन की बाँसुरी बजाने लगे। तो भी पूँजीवाद के नये अवतार फासिज्म और नात्सिज़्म श्रमजीवी जनता की आँख में धूल झोंकना अच्छी तरह जानते हैं। हिटलर जर्मनी के स्वाभिमान को लौटाने

ओर वृहत्तर जर्मनी के निर्माण का प्रोग्राम उनके सामने रक्खा। फ्रांस और इंगलैंड का पूँजीवाद पूँजीपतियो के वैयक्तिक स्वार्थ और अदूरदर्शिता के कारण श्रमजीवी जनता को अपनी ओर उतना खींच नही सकता था इसीलिए उन्हें फूँक-फूँक कर क़दम रखना पडता था। उधर जर्मनी पूँजीपतियो के स्वार्थ को आँख के ओझल रखकर राष्ट्रीय महत्त्वाकाक्षा की जबर्दस्त शराब पिला रहा था। दोनों ही तरफ जोंको के स्वार्थ का सवाल था। और, दोनों ही तरफ की जोंके अपने-अपने स्वार्थ के लिए जबर्दस्त तैयारियाँ कर रही थीं।

तीन वर्ष की तैयारी के बाद हिटलर ने जर्मन-स्वाभिमान लौटाने के लिए सब के पहले कुछ करना चाहा। जापान ने मचूरिया को हड़प कर दिखला दिया था कि इगलैंड, फ्रास और अमेरिका के पूँजीवादी आपस मे असहमत और लडाई के लिए तैयार नहीं हैं। वह फ्रास और इगलैंड के भीतरी मतभेदों को भी जानता था और समझता था कि इगलैंड सिर्फ अपनी पगड़ी बचाना चाहता है। यही समझकर ७ मार्च १९३६ को हिटलर ने जर्मन फौजे राइनलैंड मे उतार दीं और फ्रास, तथा इगलैंड मुँह ताकते रह गये। दो बरस चार दिन बाद—जब कि मुसोलिनी अबीसीनिया मे इंगलैंड की क़लई खोल चुका था—११ मार्च १९३८ को हिटलर ने आस्ट्रिया को हडप लिया! बाहर की जोंके तिलमिला कर रह गईं। लेकिन जर्मन जोंकों की प्यास न इतने से बुझ सकती थी और न जर्मन जनता को चिर-

काल तक मोखन छोड़ आलू खाने के लिए तैयार रखा जा सकता था। आलू खाने को राजी रखने के लिए न जाने अभी हिटलर को और कितने काण्ड करने होगे। १ अक्टूबर, १९३८ को हिटलर ने सुडेटेनलैंड को चेकोस्लोवाकिया से छीन लिया और १५ मार्च १९३८ को सारी चेकोस्लोवाकिया को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। दुनिया भर की जोंके अगले युद्ध के लिए ज़बर्दस्त तैयारियाँ कर चुकी है। अगले युद्ध के नर-संहार के सामने पिछला महायुद्ध कोई अस्तित्व नही रक्खेगा। जर्मनी के पास जहाँ अब आठ करोड आदमी जोंकों के लिए नये बाजार पर कब्ज़ा करने के वास्ते ख़ून बहाने को तैयार हैं वहाँ उसने हवाई, सामुद्रिक और स्थानीय युद्धों के लिए भय-कर अस्त्र-शस्त्र तैयार कर रक्खे हैं। अब उसके हवाई जहाज़ों की एक चढाई मे पौन करोड आबादी का लडन निर्जन हो सकता है। लडाई मे मरने वाले सिर्फ सैनिक नही रहेंगे, अब तो मरने वालों मे अधिक सख्या होगी निरपराध नागरिकों की। कोई बूढे-बच्चो की परवाह नहीं करेगा। सभी जोंके बड़े जोश के साथ ससार मे प्रलय लाने की तैयारियाँ कर रही हैं। जिस वक्त मनुष्य जाति ने अपने भीतर पहली जोंक पैदा की थी, उस वक्त उसे क्या मालूम था कि ये जोंके बढ कर आज उसे यह दिन दिखायेगी। इसके विनाश के बिना संसार का नही। जोंको! तुम्हारी जय हो!

॥: समाप्त :॥